नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 1 अंक 12-वर्ष 2 अंक 1
जनवरी-फरवरी 2000 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

नये वर्ष की शुरुआत व्यापक हड़तालों के साथ नई आर्थिक नीतियों से तबाह मेहनतकशों की हड़तालों-आन्दोलनों का सिलसिला थमने वाला नहीं है

इस नये वर्ष की शुरुआत देश के अनेक हिस्सों में मजदूरों की व्यापक हड़तालों के साथ हुई। भारतीय जनता पार्टी के शासन में उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों पर बेतहाशा तेजी के साथ अमल के बाद पहली बार इतने बड़े पैमाने पर हड़तालों का सिलसिला शुरू हुआ था। उत्तर प्रदेश के बिजली मजदूरों, देश भर के बन्दरगाह-गोदी मजदूरों की हड़तालों के साथ-साथ राजस्थान और जम्मू कश्मीर के कर्मचारियों की हड़ताल ने भी जोर पकड़ लिया था। उत्तर प्रदेश में करीब सवा लाख बिजली मजदूर और कर्मचारी बारह दिन तक हड़ताल पर रहे। देश भर के ।। प्रमुख बन्दरगाहों के लगभग एक लाख से ज्यादा मजदूरों की हड़ताल लगभग एक सप्ताह तक चली। राजस्थान और जम्मू-कश्मीर के राज्य कर्मचारियों की हड़ताल लगभग डेढ़ महीने से तमाम सरकारी दमन के बावजूद जारी है। आंध्र प्रदेश में जूनियर डाक्टरों की हड़ताल बीस दिन से अधिक तक चलती रही।

आखिरकार सरकार बिजली और बन्दरगाह मजदूरों की हड़तालों को खतम कराने में कामयाब हो गई है। चारों ओर से सरकार को बधाइयां दी जा रही हैं कि वह ट्रेड यूनियनों की ब्लैकमेलिंग के आगे झुकी नहीं है। पूंजीवादी अखबारों में इस बात पर सम्पादकीय लिखे जा रहे हैं कि सरकार ने यूनियनों को आर्थिक सुधारों ने बाधा नहीं डालने दी और देशी-विदेशी निवेशकों का विश्वास बरकरार रखने में कामयाब हुई है।

उदारीकरण की नीतियां लागू होने के बाद से ही बढ़ती बदहाली-तबाही

• मुकुल श्रीवास्तव

के कारण हड़तालों-आन्दोलनों का सिलसिला दरअसल कभी रुका ही नहीं है। देश के अलग-अलग हिस्सों में जनता के अलग-अलग तबके अपनी-अपनी मांगों को लेकर लगातार लड़ते रहे हैं। लेकिन पहली बार अर्थव्यवस्था के दो महत्वपूर्ण सेक्टरों के मजदूरों ने एक साथ और इतने बड़े पैमाने पर हड़ताल की थी।

इन हड़तालों ने कई बातें साफ कर दीं। नई आर्थिक नीतियों के कारण पिछले कुछ वर्षों में जनता पर जिस कदर तबाही-बर्बादी का कहर टूट पड़ा है, उसके दबाव में मेहनतकशों के विभिन्न तबकों के आन्दोलनों का सिलसिला अब थमने वाला नहीं है। यह तो महज शुरुआत है। लेकिन यह भी साफ हो गया है कि यूनियनों के नेतृत्व में बैठे लोग न तो ईमानदारी से कोई लड़ाई लड़ना चाहते हैं और न ही उनमें इसकी क्षमता रह गई है। इस बार भी मजदूरों-कर्मचारियों के भारी दबाव के ही चलते नेतृत्व को हड़ताल का आह्वान करना पड़ा और मौका पाते ही महज कुछ थोथे आश्वासनों के आधार पर उन्होने घुटने टेक दिये। उत्तर प्रदेश में आम बिजली मजदूर और कर्मचारी तो हड़ताल वापस लिये जाने के बाद भी काम पर जाने को तैयार नहीं थे। मजदूरों के नाम पर नकली लाल झण्डे की राजनीति करने वाली संसदमार्गी वामपंथी पार्टियों का असली मजदूर विरोधी चेहरा एक बार फिर उजागर हो गया। बिजली हड़ताल के मामले में तो वैसे भी वे कुछ कहने की स्थिति में नहीं थीं। आखिर जिन तथाकथित सुधारों के विरोध में मजदूर सड़क पर उतरे थे उन्हें मंजूरी देने वाली कमेटी में समाजवादी मुलायम सिंह यादव से लेकर "वामपंथी" ज्योति बसु तक शामिल थे।

सरकार ने शुरू से ही इस बात का एलान कर दिया था कि इस आन्दोलन से निपटना उसके लिए एक टेस्ट केस है। देशी-विदेशी पूंजीपतियों की इस समय सबसे विश्वसनीय पार्टी भाजपा को यह साबित करना था कि वह उनके हितों को सुरक्षित रखने के लिए किसी भी हद तक जा सकती है और आर्थिक "सुधारों" की राह में आने वाले जनता के किसी भी आन्दोलन को कुचल सकती है।

।4 जनवरी को प्रदेश के बिजली मंत्री नरेश अग्रवाल ने बड़े ही नाटकीय तरीके से बिजली बोर्ड को तीन हिस्सों में बांटने की अधिसूचना जारी कर दी। इसके विरोध में बिजली कर्मचारियों की हड़ताल शुरू होने के साथ ही सरकार ने आक्रामक तेवर अपना लिये। पहले दिन से ही प्रदेश सरकार के साथ ही केन्द्र सरकार ने भी ऐलान कर दिया कि सरकार सख्त रवैया अपनायेगी और बिजली बोर्ड के पुनर्गठन के प्रस्ताव पर बात तक नहीं करेगी। विश्व बैंक और दूसरी अन्तरराष्ट्रीय एजेन्सियां उत्तर प्रदेश के बिजली कर्मचारियों की हड़ताल पर नजर रख रही थीं। ऐसे में सरकार हड़ताल तोड़वाने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार थी वरना ऊर्जा क्षेत्र के निजीकरण का मामला गड़बड़ा जाता, जिसके बारे में सरकार विश्व बैंक को

(पेज 5 पर जारी)

नया वर्ष संघर्षों का, नई सदी मेहनतकश की

सम्पादकीय अग्रलेख

सन् 2000 के शुरू होने के साथ ही पूंजीवादी मीडिया ने नई सहस्राब्दी के आगमन का खूब ढिंढोरा पीटा। दुनिया भर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा प्रायोजित उत्सवों-मेलों की भरमार रही।

सच पूछें तो विश्व-पूंजीवाद आज भीतर से जश्न मनाने के मूड में नहीं है। फिर भी उसने जश्न मनाये। क्योंकि बाजार की दुनिया में जश्न मनाना भी एक व्यापार है, एक उद्यम है। सहस्राब्दी समारोह और टी.वी., इण्टरनेट, अखबारी घरानों आदि द्वारा किये गये किसिम-किसिम के आयोजन -प्रायोजन (गत सहस्राब्दी के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, महिला... आदि-आदि के चुनाव, सहस्राब्दी-शिशु के शिगूफे वगैरह) दरअसल अपना-अपना माल बेचने के लिए की जाने वाली विज्ञापनबाजी के अलावा और कुछ भी नहीं था।

अन्यथा विश्व-पूंजीवाद के अन्त:पुरों में, मंत्रणा-कक्षों में और चिन्तन-केन्द्रों में आज या तो मातमी सन्नाटा है या "अन्त" की आशंका का रुदन है या फिर बदहवासी भरी चीख-पुकार का कोलाहल है। बेशक, बीसवीं सदी की आखिरी दहाइयों में विश्व-पूंजीवाद के पश्चिमी युद्ध-सरदारों ने कुछ जीतें जरूर हासिल की थीं। खुशचेवी सिद्धान्तों की बुनियाद पर खड़े सोवियत और पूर्वी यूरोपीय नकली समाजवादी किलों को फतह करने के बाद विश्व-बाजार के फैलाव की एक नई जमीन और नई सम्भावनाएं उत्पन्न हुई। उधर "बाजार समाजवाद" के कपटी फार्मूले की आड़ में चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद, वहां भी पूंजी लगाने और अकूत मुनाफा कमाने के अवसर पैदा हुए—देशी नये बुर्जुआओं के लिए भी और साम्राज्यवादियों के लिए भी।

लेकिन हालात ऐसे बने कि विजय की किलकारियां गले में ही घुटकर रह गईं और उनकी जगह घबराहट की घुरघुराहटें फूटने लगीं। नये पैदा हुए बाजारों ने पूंजीवाद की बुनियादी समस्या हल नहीं की। मनमानी शर्तों पर पूंजी लगाने की जो संभावनाएं सोवियत संघ के घटक देशों, पूर्वी यूरोप के देशों, चीन और तीसरी दुनिया के देशों में पैदा हुई हैं, वे अभी से ही चुकती हुई भी दीख रही हैं। एक तो साम्राज्यवादी सरगना मनमानी शर्तों पर पूंजी लगाकर जिसतरह अतिलाभ निचोड़ रहे हैं, उससे उनके पास पहले से ही पूंजी के अम्बार की जो समस्या है, वह हल नहीं हो रही है। उलटे, आने वाले दिनों में इसके और अधिक गम्भीर हो जाने का अंदेशा है। दूसरे, तीसरी दुनिया के पिछड़े देशों की जनता को पहले से ही इस कदर निचोड़कर बदहाल कर दिया गया है और अब उनकी श्रमशक्ति को इतनी सस्ती दरों पर निचोड़ा जा रहा है कि बाजार चाहे मालों से पटे हों, व्यापक आबादी के पास दो जून की रोटी से अधिक खरीदने की कुछ ताकत ही नहीं रह गई है। धनिक और मालदार मध्यवर्ग की संख्या में कुछ बढ़ोत्तरी हुई है, पर इतनी नहीं कि बाजार के लिए उपभोक्ता के रूप में वे ही काफी हों। लेकिन पूंजी तो बैठी नहीं रह सकती। इसलिए वह आज लगातार, ज्यादा से ज्यादा, ऐसे उद्योगों में (जैसे विज्ञापन, मनोरंजन उद्योग आदि) लग रही है जहां

(पेज 9 पर जारी)

भीतर के पृष्ठों पर

भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन की समस्याएं : एक बहस –3
'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के प्रकाशन की 152वीं वर्षगांठ पर आधुनिक समाज का क्रान्तिकारी वर्ग—सर्वहारा –4
जन-मुक्ति की अमर गाथा : चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा –6
मक्सिम गोर्की की कहानी एक पतझड़ –10
असली उग्रवादी है पुलिस –12

पर्यावरण की चिन्ता या इजारेदारी की सोची-समझी साजिश

बिगुल के दिसम्बर 1999 अंक में हमने पर्यावरण-सुधार की चिन्ता की आड़ लेकर, न्यायपालिका के फैसले के सहयोग से दिल्ली के लाखों छोटे उद्योगों की बन्दी के लिए रचे गये सरकारी कुचक्र पर और इससे पैदा होने वाली 15 लाख से भी अधिक मजदूरों की संभावित बेकारी के प्रश्न पर सम्पादकीय अग्रलेख दिया था।

यह अनायास नहीं है कि दिल्ली में लाखों लघु उद्योगों की बन्दी का यह फैसला तब आया है जब भाजपा सरकार ने "उदारीकरण के दूसरे दौर" की गाड़ी को ढलान पर सरपट दौड़ा दिया है। भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में किसी

दिल्ली में लघु उद्योगों की बन्दी का मुद्दा

न किसी तरह से छोटी पूंजी की तबाही और इजारेदार पूंजी का विस्तार होना ही है। यह प्रक्रिया आज अनेकों रूपों में जारी है—कहीं सीधे-सीधे पूंजी की ताकत के बूते तो कहीं पर्यावरण-प्रेम या कोई और आड़ लेकर। जाहिरा तौर पर, इसकी कीमत अंततोगत्वा करोड़ों मेहनतकशों को ही बेकार होकर चुकानी है। इस प्रश्न पर अपनी लड़ाई को सही दिशा में सही ढंग से संगठित करने और आगे बढ़ाने के लिए यह जरूरी है कि मजदूर वर्ग इस बात को समझे कि दिल्ली में जो हो रहा है वह देश के अन्य हिस्सों में भी हो रहा है और यह उदारीकरण-कुचक्र का ही एक हिस्सा है। ऐसा आज ही क्यों हो रहा है, यह जानना भी जरूरी है।

1947 में सत्ता हासिल करने के बाद के लगभग 30-35 वर्षों तक भारतीय पूंजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद से गांठ जोड़े रहकर उसके आर्थिक हितों की हिफाजत करते हुए भी पूरीतरह उसके आगे घुटने टेककर नवउपनिवेशों जैसी स्थिति में पहुंच जाने से बचने के लिए तथा अपने

(पेज 12 पर जारी)

आपस की बात

साथी आर्य कुतर्क कर रहे हैं

बिगुल का बहस परिशिष्ट अंक पढ़ने को मिला। साथी आर्य के कथन से प्रतीत होता है वह अपने छुपे उद्देश्यों को लेकर कुतर्क कर रहे हैं और प्रतिक्रिया- वादियों की तरह बिगुल पर आरोप भी लगा रहे हैं। अक्टूबर क्रान्ति से, विशेषकर ''सर्वहारा की तानाशाही'' के विरुद्ध काउत्स्की के लेख की आलोचना करते हुए स्वयं लेनिन ने उसके लिए जिस तरह की गन्दी-गन्दी गालियों का खुला प्रयोग किया था क्या वह लेनिन की कुंठाग्रस्त अभिव्यक्ति थी?

मजदूर वर्ग की राजनीति है साम्यवाद किन्तु संसार की किस कम्युनिस्ट पार्टी में मजदूर वर्ग स्वयं प्रभुत्व प्राप्त कर सका है? भारत भी अपवाद नहीं है। अतः सम्पादक ने साथी आर्य को पत्र उत्तर देने में बुर्जुआ आदर्श का ही पालन किया है।

—बब्बन सिंह
चोंगाई, धनवाद

जितनी जल्दी हो इस अमानवीय व्यवस्था को बदल दो

स्थानीय समाचार पत्र के भीतर एक कोने में एक छोटी सी खबर थी—'रामनगर (नैनीताल) के हिम्मतपुर क्षेत्र में एक फ्लोर मिल में कार्यरत 18 वर्षीय श्रमिक कौशल किशोर की रात्रिपाली में कार्य के दौरान मिल के पट्टे में फंसकर मृत्यु हो गयी।' एक दिन बाद ही संक्षिप्त समाचारों में था—'आवास-विकास कालोनी, रुद्रपुर के एक निर्माणाधीन मकान का दूला गिरने से एक वृद्ध श्रमिक जहूर अहमद मर गया।'

रंगीन समाचारों के चकाचौंध, मिलेनियम में प्रवेश के शोरगुल और वाई टू के की चिन्ता में अटे पड़े अखबार में तीसरे दिन भी ऐसी ही एक छोटी सी खबर दबी हुई थी—'गदरपुर रोड (रुद्रपुर) स्थित 'जिंदल पैडी प्रोडक्टस' (राइस मिल) में कार्यरत श्रमिक भदई साहनी की पट्टे की चपट में आ जाने से मौत हो गई। भदई के शरीर के कई हिस्से हो गये थे।'

ये समाचार तो महज कुछ बानगी हैं। बेहद कठिन व अमानवीय परिस्थितियों में आज मजदूरों की भारी आबादी काम करने के लिए मजबूर हैं, और न जाने कितने मजदूर प्रतिदिन ऐसे ही काल के गाल में समा जा रहे हैं।

यूं तो पहले से ही एक भारी मेहनतकश आबादी—वह आबादी जिसके मेहनत के दम पर यह पूरी दुनिया टिकी हुई है—खतरनाक परिस्थितियों में कारखानों-मिलों से लेकर खेतों-खलिहानों —भवन निर्माण के कामों में लगी रही थी। लेकिन आज के उदारीकरण के दौर में, पूंजीवादी लुटेरों द्वारा पैसा कमाने की अंधी हवस ने, लम्बे समय के संघर्षों से अर्जित थोड़ी बहुत सहूलियतों तक पर खुले आम डकैती डालनी शुरू कर दी है। इन पूंजीवादी लुटेरों की बस एक ही फितरत है—झोंक दो इन मेहनती इंसानों को मुनाफे की मशीन में, शरीर के एक-एक कतरे खून की निचोड़ कर ढालो ज्यादा से ज्यादा टकसाल।

12-12, 14-14 घण्टे हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी एक बड़ी आबादी को न्यूनतम दिहाड़ी तो मिलता नहीं, जिन्दगी के सुरक्षा की गारण्टी भी बहुत दूर की बात है। ज्यादातर कारखानों में तेज तापक्रम पर काम करने वाले श्रमिकों के न्यूनतम सुरक्षा का इंतजाम नहीं है, हाथ में दास्ताने और पैर में जूते तक नहीं हैं। राइस मिलों से लेकर कालीन उद्योगों में लगे ज्यादातर मजदूर अपनी युवावस्था में ही टीवी जैसे खतरनाक रोग के शिकार हो जाते हैं। क्या इस सच्चाई से मुंह मोड़ा जा सकता है?

एक तरफ 10-15 फीसदी वे धनपशु हैं जिनकी औलादें मुंह में चांदी का चम्मच लेकर पैदा होते हैं, जो अपने नौबढ़ छोकरों के लिए पांच लाख की मोटर साइकिलें खरीदते हैं, जिनके सर के बाल से लेकर पैर के नाखून तक का लाखों करोड़ों का बीमा होता है। और जिनकी बदौलत इन धनपतियों के सुख व समृद्धि के टापू बसे हैं, उनकी जिन्दगी की भी कोई कीमत नहीं। एक बहुसंख्यक आबादी आज रसातल की जिन्दगी जीने को अभिशप्त हो गयी है। आखिर क्यों? इसलिए कि हर हद तक की पीड़ा को सहकर भी हम खामोश हैं। हम रोज-रोज अपने मरने को ही जीना समझ बैठे हैं। हमने हालात से समझौता कर लिया है। इन मुनाफाखोरों की कुत्सित साजिश का शिकार होकर हम टुकड़े-टुकड़े में बंटे हुए हैं। शायद हम यह भूल गये हैं कि इन आदमखोर कागजी बाघों की दहाड़ तभी तक है जब तक हम चुप हैं।

हमें अपनी चुप्पी तोड़नी ही पड़ेगी। क्योंकि चुप्पी सबसे बड़ा खतरा है जिन्दा आदमी के लिए। यदि हम अब भी नहीं चेते तो हममें से किसी न किसी कौशल किशोर की, जहूर अहमद की, भदई साहनी की मौतें होती रहेंगी। यदि इंसानी जिन्दगी जीने का हक हमें भी चाहिए तो जितनी जल्दी हो सके इस अमानवीय व्यवस्था को बदल देना होगा।

—विजय कुमार
रुद्रपुर, ऊधमसिंह नगर

ए.एस.पी. के अस्थायी मजदूरों की एकता तो महज शुरुआत है

हमें व्यापक मजदूर एकता कायम करनी होगी

उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र के ज्यादातर कारखानों में मालिकों ने मजदूरों के हक पर खुली डकैती डालते हुए महज न्यूनतम बोनस 8.33 प्रतिशत बांट कर अपने कर्तव्यों की इतिश्री कर ली तो गजरौला (ज्योतिबा फूले नगर) स्थित ए.एस.पी. (आनंद सीलिंग प्रोडक्टस लि.) के मजदूरों ने अपने सूझ-बूझ भरे एकताबद्ध संघर्ष की बदौलत प्रबन्धकों के फ़र्जी बैलेंसशीट और तथाकथित घाटे को धता बताते हुए 15 प्रतिशत बोनस हासिल करने में कामयाबी प्राप्त कर ली।

ए.एस.पी. पहले एक बड़ा कारखाना था जो रुद्रपुर में स्थित था। मालिकों ने आपसी बंटवारे के माध्यम से ए.एल.पी. व ए.एस.पी. के नाम से कारखाने को दो भागों में बांटकर मजदूर आबादी को ही दो हिस्सों में विभाजित कर दिया। बंटवारे की दीवार के बावजूद दोनों कारखानों के मजदूरों में एकता पूर्व की भांति कायम रही। क्योंकि यह एकता, यहां के दमनकारी प्रबन्धतंत्र के खिलाफ लम्बे संघर्षों के दौरान कायम हुई थी। 1987 के दमन के बाद 1994 में डेढ़ माह के लम्बे जुझारू संघर्ष के बाद यहां के मजदूरों ने शानदार जीत हासिल की थी और कारखाने के प्रबंधकों को यूनियन की मान्यता स्वीकार करनी पड़ी थी। जिसे तोड़ने की हरचंद कोशिश वह करता रहा। अन्त में कारखाना ही दो हिस्सों में बंट गया।

फिर 1998 में मजदूरों के साथ एक और धोखाधड़ी की गयी। छापे मार तरीके से रातोरात रुद्रपुर से कारखाने की मशीनों को क्रेन से उखाड़कर और ट्रकों में लादकर गजरौला शिफ्ट कर दिया गया। बहाना 'मेंटेनेन्स' का बनाया गया (क्या आज तक मेंटनेन्स हो रहा है?) इसके पीछे की कहानी कारखाने पर सब्सिडी हड़पने, तमाम करों की चोरी के साथ ही लगे हाथों मजदूरों की छंटनी करने और मजदूर यूनियन को खत्म कर देने की साजिश थी। प्रबन्धकों का यूनियन तोड़ने का षड्यंत्र कामयाब नहीं हुआ। स्थानान्तरण से परेशान मजदूरों ने अन्ततः अपने संगठन की हिफाजत कर ली और पुनः यूनियन सक्रिय हो गया।

मजदूरों ने अपने संघर्षों को जारी रखते हुए अस्थायी दैनिक वेतनभोगी मजदूरों के साथ भी एकता कायम करने में महत्वपूर्ण सफलता अर्जित की। परिणामतः कारखाने में ठेकेदारी प्रथा का अन्त हो गया, अस्थायी मजदूरों के लिए न्यूनतम वेज लागू हुआ और वरिष्ठता क्रम से 25 अस्थायी मजदूर स्थायी हो गये। मजदूरों ने अपने संघर्षों और कुर्बानी के बदौलत अस्थायी-स्थायी सभी श्रमिकों के लिए भोजन के लिए एक मूल्य चार रुपये का कूपन देने के लिए प्रबन्धकों को बाध्य किया। पहले अस्थायी मजदूरों से ज्यादा पैसा वसूला जाता था। इस समानता के लिए स्थायी मजदूरों को अब पहले से एक रुपये अतिरिक्त देना पड़ रहा है। लेकिन वे खुश हैं, अपने इन मजदूर साथियों को बराबरी का हक दिलाकर।

यह महज गजरौला ही नहीं बल्कि पूरी मजदूर आबादी के लिए गर्व का विषय है। हर मेहनत करने वाला एक है चाहें वह स्थायी हो, अस्थायी हो या ठेकेदारी का, चाहें छोटे कारखाने का हो अथवा बड़े कारखाने का, चाहें खेतों में काम करता हो या रिक्शा-ठेला चलाता हो या भवन निर्माण में लगा हो। आज के दौर में यह बेहद जरूरी है कि व्यापक मजदूर एकजुटता कायम की जाये।

इस काम को अंजाम देने के लिए हम मजदूरों के क्रान्तिकारी अखबार 'बिगुल' की जरूरत को महत्वपूर्ण मानते हैं। यह हमारी आवाज को देश के कोने-कोने में आम मेहनतकश व जागरूक मजदूर साथियों तक पहुंचाता है। हमारा मानना है कि व्यापक एकजुटता बनाने, मजदूर संगठन खड़ा करने का काम ऐसे ही जागरूक मजदूरों की पहल पर ही होगा, जैसा कि ए.एस.पी. के मजदूरों ने किया था।

साथ ही, यह अखबार हमें मजदूर आन्दोलनों से कुछ जरूरी नतीजों और कीमती सबके निकालकर हमारे संघर्षों को नयी दिशा प्रदान करता है। यह अखबार सरकार की मजदूर व आम जनविरोधी नीतियों-कठिनाइयों-षडयंत्रों से भी अवगत कराते हुए मजदूरों की क्रान्तिकारी विरासत से भी परिचित कराता है। सही अर्थों में यह एक क्रान्तिकारी अखबार है।

—ए.एस.पी. इम्पलाइज यूनियन के कुछ मजदूर साथी
गजरौला, ज्योतिबाफुले नगर

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भुजाछोर ''कम्युनिस्टों'' और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

• शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ • मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज) मऊनाथभंजन, मऊ • जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर • विजय इन्फार्मेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर • विश्वनाथ मिश्र, जनता कार्यालय, बड़हलगंज, गोरखपुर • ओमप्रकाश, यादव का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ • जनचेतना स्टाल, निकट कॉफी हाउस, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 7) • राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ • विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, लखनऊ • देवेन्द्र प्रताप, द्वारा श्री इन्द्र सिंह रावत, आल्मा कॉटेज, 7, मल्ली ताल, नैनीताल • विजय कुमार, 55/3 ई.डब्ल्यू.एस., आवास विकास कालोनी, रुद्रपुर, ऊधमसिंह नगर • रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, रुद्रपुर, ऊधमसिंह नगर • रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, पन्तनगर • प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, लंका, वाराणसी • राजीव वर्मा, द्वारा डा. जे.पी. वर्मा, बी.पी.82, पटेलनगर, मुगलसराय • राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र • सत्यम वर्मा, युनीवार्ता, 9, रफी मार्ग, नई दिल्ली • ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाखा, दिल्ली • डी. के. सचान, कृषि विज्ञान केन्द्र, विकास भवन, कलक्ट्रेट, गाजियाबाद • एस.के. शर्मा, 282 बी, रेलवे कालोनी, गढ़हरा, बेगूसराय • सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, बोकारो • गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, बेगूसराय • पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना • समकालीन प्रकाशन (प्रा) लि., पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, पटना • विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक, नेपियर टाउन, जबलपुर • नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुंदल, ग्रा./पो. संतनगर, जिला सिरसा • राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग • बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता • शर्मा बुक स्टॉल, थाना रोड, नराली, तिनसुकिया

नेपाल • पुस्तक पत्र-पत्रिका बिक्री-वितरण केन्द्र, डिल्ली बाजार, ओकालो, काठमांडू • विशाल पुस्तक सदन, विजुआर बाजार, प्यूठान, राप्ती अंचल • विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल • विश्व नेपाली पुस्तक सदन, भ्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई

भारत में क्रान्तिकारी वामपंथी आन्दोलन की समस्याएं : एक बहस

भारत में क्रान्तिकारी वामपंथी आन्दोलन की समस्याओं पर साथी पी. आर. हरणे के पत्र से जिस बहस की शुरुआत हुई थी, उसे आगे बढ़ाते हुए 'बिगुल' के अगस्त 1999 के अंक में हमने साथी अनादि चरण के लेख की पहली किश्त छापी थी जिसका शीर्षक था, *'सवाल को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना होगा'* विभिन्न विवशताओं के कारण और फौरी प्रश्नों पर दी जाने वाली सामग्री की अधिकता के कारण लेख की दूसरी किश्त नवम्बर-दिसम्बर अंक में छप सकी। इसकी तीसरी किश्त इस बार दी जा रही है। - सम्पादक

संशोधनवादी और अन्य कुछ मध्यमवर्गीय वामपंथी पार्टियों की कार्यक्रम-सम्बन्धी सोच (तीसरी किश्त)

• अनादि चरण

संसदमार्गी बनने के बाद भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने 1951 के नीति-विषयक वक्तव्य की खुश्चेवी व्याख्या के आधार पर राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। उसके अनुसार, 1947 के बाद से भारत में राज्यसत्ता पर राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का नियंत्रण है। भारत में समाजवादी क्रान्ति से पहले सामन्तवाद-साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति पूरी करनी होगी। इसके लिए मजदूर, किसान, शहरी-देहाती मध्यवर्ग और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का संयुक्त मोर्चा बनाना होगा। सत्तारूढ़ राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का, एक हिस्सा (खासकर बड़े पूंजीपतियों का बड़ा हिस्सा) सामन्तवाद साम्राज्यवाद से समझौता करता है और दूसरा (विशेषकर छोटे-मंझोले, पूंजीपति) राष्ट्रीय जनवाद के कार्यभारों को पूरा करना चाहता है। इस फार्मूले के आधार पर भाकपा हमेशा ही कांग्रेस में इस या उस धड़े को प्रगतिशील मानकर, या फिर अन्य बुर्जुआ दलों या उनके किसी धड़े को प्रगतिशील मानकर मोर्चा बनाने के नाम पर बुर्जुआ दलों के पिछलग्गू की भूमिका निभाती रही है। पहले यह पार्टी रूसी साम्राज्यवादियों द्वारा पालित-पोषित उन्हीं की हितसेविका पार्टी की भूमिका में थी। सोवियत संघ के विघटन के बाद यह एक सुधारवादी बुर्जुआ पार्टी या सामाजिक-जनवादी पार्टी की भूमिका में है, जो मजदूरों-किसानों के लिए इसी व्यवस्था में कुछ रियायतों की मांग करने और साम्प्रदायिकता-विरोध के नाम पर इन-उन बुर्जुआ पार्टियों के साथ मोर्चा बनाने तक ही सीमित है और निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों को अंशत: लागू करने और अंशत: बुर्जुआ राज्य के कल्याणकारी ढांचे को बरकरार रखने की वकालत करती हुई महज एक संतुलनकारी भूमिका निभा रही है। क्रान्ति के बजाय महज चुनावी गंठजोड़ ही इसे करना है और नेहरूवादी ''समाजवाद'' से इसका मार्क्सवाद एक कदम भी आगे नहीं जाता। इसलिए इस पार्टी के कार्यक्रम की विसंगतियां इसे परेशान भी नहीं करतीं। जब क्रान्ति करनी ही न हो तो कार्यक्रम महज 'कोल्ड स्टोरेज' में ही रखने की चीज होती है।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी 1964 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व को संशोधनवादी बताते हुए उससे अलग हुई थी। इसने 1951 के नीति-विषयक वक्तव्य की अपनी व्याख्या प्रस्तुत की। यह पार्टी भारतीय राज्यसत्ता को पूंजीपति वर्ग और भूस्वामी वर्ग के वर्ग-शासन का उपकरण मानती है, लेकिन यह नहीं बताती कि यह भूस्वामी वर्ग सामन्ती है या पूंजीवादी। यह भारत के बड़े पूंजीपतियों को साम्राज्यवाद के प्रति समझौतापरस्त ता बताती है लेकिन इन दोनों के बीच के सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या नहीं करती। यह पार्टी भी मानती है कि भारत आज सामन्तवाद साम्राज्यवाद विरोधी पूंजीवादी जनवादी क्रान्ति की मंजिल में है। सत्तारूढ़ बड़े पूंजीपति चूंकि साम्राज्यवाद के प्रति समझौतापरस्त हैं, और बड़े भूस्वामी उनके साथ हैं, अत: यह सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में किसानों, मध्यमवर्ग और छोटे पूंजीपतियों के संयुक्त मोर्चे के आधार पर जनता का जनवादी राज्य कायम करने की बात करती है। समय-समय पर यह पार्टी और इसके प्रोफेसर बुद्धिजीवी लोग गांवों में पूंजीवादी विकास और वर्ग-सम्बन्धों में अपने वाले बदलावों की भी चर्चा छेड़ते हैं, पर उसे किसी नतीजे तक पहुंचाये बिना अधूरा छोड़ देते हैं।

इस पार्टी का कार्यक्रम भी तमाम विसंगतियों से भरा हुआ है, पर इसे इससे कोई दिक्कत नहीं पेश आती, क्योंकि क्रान्ति के कार्यक्रम को लागू करने के बजाय इन्हें भी महज चुनावी जोड़-तोड़ ही करने हैं। समय बीतने के साथ ही अब इनकी राजनीति और भाकपा की राजनीति में कोई फर्क नहीं रह गया है। दोनों समान रंग के संसदमार्गी बन चुके हैं।

भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन की मुख्य धारा के बाहर त्रात्स्कीपंथ से प्रभावित मध्यवर्गीय वामपंथ की एक धारा 1947 के पहले से ही मौजूद रही है। इसका मानना है कि चूंकि 1947 में भारतीय राज्यसत्ता की बागडोर पूंजीपति वर्ग के हाथों में आई, इसलिए उसी समय से हमारा देश पूंजीवाद-विरोधी क्रान्ति—यानी समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में है। लेकिन इस धारा के दल और ग्रुप इस बात का जवाब नहीं देते कि यदि किसी देश में बुर्जुआ वर्ग के सत्तारूढ़ होते ही बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के काम न पूरे हों, यदि वे एक लम्बी, क्रमिक प्रक्रिया में पूरे हो, यदि भूमि-सम्बन्ध तत्काल बदलने के बजाय धीरे-धीरे (प्रशियाई जुंकर-टाइप बदलाव के मार्ग से) बदलें, तो मात्र पूंजीपति वर्ग के सत्ता में आ जाने से क्रान्ति की मंजिल भला कैसे बदल जायेगी। जैसे कि 1948-49 के भारत में, जब कि अनौपनिवेशीकरण की प्रक्रिया अभी जारी ही थी और बुर्जुआ भूमि-सुधार के काम में तो हाथ भी नहीं लगा था, तो उससमय वर्गों की लामबंदी समाजवादी क्रान्ति के हिसाब से भला कैसे की जा सकती थी?

इस त्रात्स्कीपंथी धारा से कुछ लोगों ने 1948 में बाहर निकलकर स्तालिन और माओ के विचारधारात्मक अवदानों की परम्परा से खुद को जोड़ते हुए 'सोशलिस्ट यूनिटी सेण्टर' का गठन किया, पर कार्यक्रम के प्रश्न पर उनकी पहुंच और पद्धति त्रात्स्कीपंथी ही रही और वे भारत को 1947 से ही समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में मानते रहे।

समाजवादी क्रान्ति की बात करते हुए भी ये लोग, उत्तर औपनिवेशिक समाज के भूमि-सम्बन्धों, साम्राज्यवाद से सम्बन्ध और समग्र सामाजिक-आर्थिक संरचना के बारे में कोई गम्भीर विश्लेषण-विवेचना कभी नहीं प्रस्तुत कर सके, न ही कोई सार्थक वाद-विवाद चला सके। मूलत: ये पुस्तक-पूजा, व्यक्तिपूजा और भाव-विगलित आत्मतुष्टिवाद से ग्रस्त ''पैस्सिव रैडिकल'' संगठन थे, जिनके पास वास्तव में समाजवादी क्रान्ति का नारा-मात्र था, न तो कोई सांगोपांग कार्यक्रम था, न ही कोई भूमि-कार्यक्रम (एग्रेरियन प्रोग्राम) था।

इन धाराओं से अलग वामपंथी राजनीति के पटल पर पिछले लगभग तीन दशकों से भी कुछ अधिक समय से क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट राजनीति का शिविर—मार्क्सवादी-लेनिनवादी धारा मौजूद है जिसे बोलचाल की भाषा में नक्सलवादी धारा भी कहा जाता है। आम तौर पर इस धारा के अधिकांश संगठन नवजनवादी क्रान्ति के कार्यक्रम को ही अपनी अलग-अलग व्याख्याओं के साथ प्रस्तुत करते रहे हैं। पर 1980 के बाद इस शिविर की एक धारा ऐसी भी रही है जो समाजवादी क्रान्ति का कार्यक्रम प्रस्तुत करती रही है।

यद्यपि विगत तीन दशकों के ठहराव और टूट-फूट के दौरान कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर के कुछ संगठन भी संशोधनवाद के रास्ते के राही बन गये हैं, फिर भी, चूंकि आज भी इस धारा के अधिकांश संगठन मूलत: क्रान्तिकारी हैं, इसलिए कार्यक्रम का प्रश्न उनके सामने लगातार यक्ष-प्रश्न बनकर खड़ा है। चूंकि संशोधनवादी पार्टियों की तरह वे कार्यक्रम को कोल्ड-स्टोरेज में नहीं रख सकते, इसलिए तमाम रुटीनी कार्रवाइयों के बावजूद उन्हें इस प्रश्न से जूझना होता है कि हालात में आने वाले परिवर्तनों को वे कार्यक्रम की अपनी समझ के हिसाब से कैसे व्याख्या करें और अपने क्या कार्यभार तय करें अथवा अपनी कार्रवाइयों की व्याख्या कार्यक्रम की अपनी समझ के फ्रेमवर्क में कैसे प्रस्तुत करें। जब से इस धारा के (अधिकांश) संगठन आतंकवादी कार्रवाइयों के भटकाव से आगे बढ़कर जन कार्रवाइयों में लगे हैं, तब से यह प्रश्न और भी महत्वपूर्ण होकर उनके सामने आ खड़ा हुआ है। हालांकि आज भी कार्यक्रम के प्रश्न पर बहस-मुबाहसे से कतराने और विरोधी पक्ष पर लेबल चस्पां कर देने की प्रवृत्ति हावी है, लेकिन इस प्रश्न का दरकिनार कर पाना अब क्रमश: ज्यादा-से-ज्यादा मुश्किल होता जा रहा है।

(अगले अंक में जारी)

सरकार नहीं जानती कि पिछले वर्षों में कितने सरकारी कर्मचारियों की रोजी-रोटी छिनी!

क्यों जाने भला? जरूरत भी क्या है?

केंद्र सरकार के भारी उद्योग और लोक-उद्यम मंत्रालय में राज्यमंत्री वल्लभ भाई कथीरिया पिछले दिनों संसद में यह नहीं बता सके कि सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों के बंद होने के कारण कुल कितने मजदूरों कर्मचारियों को छंटनी या बर्खास्तगी के चलते अपनी नौकरी गंवानी पड़ी। यह तो उन्होंने स्वीकार किया कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में कर्मचारियों की संख्या लगातार कम हुई है और छंटनी और बर्खास्तगी भी हुई है पर ''जनतंत्र के पहरुओं'' की छंटनीशुदा और बर्खास्त कर्मचारियों की संख्या नहीं पता।

बमुश्किल तमाम मंत्री महोदय सिर्फ यह बता सके कि 1991-92 में केन्द्र सरकार के उपक्रमों में लगभग 21 लाख 84 हजार कर्मचारी काम कर रहे थे। इनमें से 1995-96, 1996-97 और 1997-98 में क्रमश: 19247, 19145 और 26853 कर्मचारियों ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ली। (हम सभी जानते हैं कि इसतरह की सेवानिवृत्तियां स्वैच्छिक नहीं बल्कि बाध्यताकारी होती हैं)।

बहरहाल, सरकार फिलहाल विनिवेश कार्यक्रम के तहत जनता के खून-पसीने से खड़े किये गये सार्वजनिक कारखानों को औने-पौने दामों पर पूंजीपतियों को बेचने के काम में जोर-शोर से जुटी है और वह पूंजीपतियों को कर्मचारियों की छंटनी, वेतन घटाने और सुविधाएं छीनने सम्बन्धी मनमाना अधिकार देने के लिए हर तरह के कानूनी बदलाव और इन्तजाम कर रही है।

सरकारी दावे कुछ और, जमीनी हकीकत कुछ और

घटता निर्यात, बढ़ता आयात

उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को लागू करते हुए पिछले नौ वर्षों के दौरान, केन्द्र की हर सरकार यह दावा करती रही है कि इन नीतियों से भारतीय उत्पादों का निर्यात भी लगातार बढ़ेगा, विदेशी मुद्रा भण्डार बढ़ेगा, रोजगार के अवसर बढ़ेंगे और खुशहाली आयेगी। लेकिन खुद सरकार के मंत्री ही संसद में जो जानकारियां देते रहे हैं, वे इन दावों की पोल खोल देती हैं।

अभी पिछले माह ही वाणिज्य और उद्योग मंत्री मुरासोली मारन ने संसद में बताया कि पिछले तीन वर्षों के भीतर निर्यात दर में लगातार गिरावट आई है जबकि आयात-दर लगातार बढ़ती गई है। यानी साम्राज्यवादी देश भारत के बाजारों को अपने मालों से पाट रहे हैं। विश्व व्यापार संगठन के निर्देशों पर अमल और बहुपक्षीय निवेश समझौते पर देर-सबेर हस्ताक्षर के बाद यह स्थिति और भी बदतर होगी। इससे देश में रोजगार के अवसरों में भी भारी कमी आयेगी।

गौरतलब है कि विदेशी पूंजीपति जो पूंजी भारत में लगा रहे हैं, वह उत्पादन के बजाय ज्यादातर वित्तीय व अन्य अनुत्पादक सेक्टरों में लगा रहे हैं। साथ ही, वे नये उद्योग लगाने की जगह पहले से खड़े उद्योगों को ही अपना शेयर बढ़ाकर हड़पने की फिराक में रहते हैं। कुछ उद्योग वे यहां के सस्ते श्रम से माल तैयार करके अन्तरराष्ट्रीय बाजार में मुनाफा कमाने के लिए जरूर लगा रहे हैं, पर ऐसे उद्योगों में उन्नत मशीनों के चलते बहुत कम लोग रोजगार पा रहे हैं और उन्हें भी दिहाड़ी या ठेका पर रखकर, 30-40 रुपये मजदूरी पर दासों की तरह 10-10, 12-12 घण्टे काम कराते हैं।

उदारीकरण से होने वाली प्रगति के यही फल आम मेहनतकश जनता को नसीब हो रहे हैं। आने वाले दिनों में यह स्थिति और बदतर होनी ही है। लेकिन साम्राज्यवादी और उन्हें पूरी फर्राखदिली के साथ न्यौतने वाले भारतीय पूंजीपति शायद यह नहीं समझते कि यह गति यदि जारी रही तो इसके बहुत कड़वे फल उन्हें भी चखने पड़ेंगे।

देश के अन्तरराष्ट्रीय बंदरगाहों में सौ फीसदी पूंजी लगाकर कब्जा जमाने के लिए साम्राज्यवादी लुटेरों को सरकार का न्यौता

क्रान्तिपूर्व चीन का जब साम्राज्यवादियों ने बलपूर्वक आपस में बंदरबांट कर लिया था तो उसके अलग-अलग बंदरगाहों को अलग-अलग साम्राज्यवादी देश ने अपने अधिकार में ले लिया था। उपनिवेशवाद के दौर में जो काम साम्राज्यवादी ताकतों ने बलपूर्वक किया था, वही काम आज आर्थिक नवउपनिवेशवाद के दौर में पूंजी की ताकत के बल पर हो रहा है। भारतीय पूंजीपति वर्ग और उनकी हुकूमत खुद ही अपने बंदरगाह विदेशी पूंजीपतियों को सौंप रही है।

प्रधानमंत्री कार्यालय में सचिव एन.के. सिंह के अनुसार, देश के पांच-छ: अन्तरराष्ट्रीय बंदरगाहों में विदेशी निवेशकों की सौ फीसदी भागीदारी के प्रस्ताव को जल्दी ही अन्तिम रूप दे दिया जायेगा। अभी पिछले दिनों भारतीय पूंजीपतियों के दो शीर्षस्थ संगठनों—'फिक्की' और 'एसोचैम' ने एक साथ मिलकर भारत-जापान व्यापार सहयोग समिति की दो दिन की बैठक का आयोजन किया था जिसमें जापान के सौ से अधिक उच्च अधिकारियों ने हिस्सा लिया। इसी बैठक में एन.के. सिंह ने जापान के पूंजीपतियों को बंदरगाह परियोजनाओं में निविदाएं देने के लिए आमंत्रित किया और बताया कि निविदाएं शीघ्र ही जारी की जायेंगी। बैठक में उन्होंने जापानी निवेशकों को यह भी आश्वासन दिया कि राजनीतिक उथल-पुथल की स्थिति भारत में उदारीकरण की प्रक्रिया को कत्तई प्रभावित नहीं करेगी। उन्होंने विश्व आर्थिक मंच की सभा में दिये गये प्रधानमंत्री के उस वक्तव्य का भी हवाला दिया जिसमें उन्होंने आश्वासन दिया था कि आर्थिक सुधार-प्रक्रिया अब लगातार जारी रहेगी तथा इसे राजनीति से अलग रखा जायेगा क्योंकि मोटे तौर पर सभी राजनीतिक दलों की आर्थिक नीतियों पर आम सहमति है।

'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' के प्रकाशन की 152वीं वर्षगांठ पर विशेष

आधुनिक समाज का क्रान्तिकारी वर्ग—सर्वहारा

''पूंजीपति वर्ग के मुकाबले में आज जितने भी वर्ग खड़े हैं, उन सबमें सर्वहारा ही वास्तव में क्रान्तिकारी वर्ग है। दूसरे वर्ग आधुनिक उद्योग के समक्ष ह्रासोन्मुख होकर अन्ततः विलुप्त हो जाते हैं; सर्वहारा वर्ग ही उसकी विशिष्ट और मौलिक उपज है।

''निम्न-मध्यम वर्ग के लोग—छोटे कारखानेदार, दस्तकार, छोटे व्यापारी, किसान—ये सब मध्यम वर्ग के अंश के रूप में अपने अस्तित्व को नष्ट होने से बचाने के लिए पूंजीपति वर्ग से लोहा लेते हैं। इसलिए वे क्रान्तिकारी नहीं, रूढ़िवादी हैं। इतना ही नहीं, चूंकि वे इतिहास के चक्र को पीछे की ओर घुमाने की कोशिश करते हैं इसलिए वे प्रतिगामी हैं। अगर कहीं वे क्रान्तिकारी हैं तो सिर्फ इसलिए हैं कि उन्हें बहुत जल्द सर्वहारा वर्ग में मिल जाना है; चुनांचे वे अपने वर्तमान नहीं बल्कि भविष्य के हितों की रक्षा करते हैं, अपने दृष्टिबिन्दु को त्यागकर वे सर्वहारा का दृष्टिबिन्दु अपना लेते हैं।'' (*कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र* : **मार्क्स-एंगेल्स**)

उपरोक्त पंक्तियों से भांति-भांति के अर्थ-अनर्थ निकाले जाते रहे हैं। इन्हें लासाल ने अपने इस फार्मूले में भी रूपान्तरित कर डाला था कि सर्वहारा के बरअक्स अन्य सभी वर्ग ''एक प्रतिक्रियावादी समूह'' होते हैं। जर्मन सामाजिक-जनवादियों ने जब इसी सूत्रीकरण को पार्टी के मसौदा कार्यक्रम (मसौदा एर्फुर्ट कार्यक्रम, 1890) में प्रस्तुत किया तो एंगेल्स ने उनकी भर्त्सना करते हुए कार्ल काउत्स्की को लिखा :

''*यह गलत है क्योंकि यह एक **ऐतिहासिक रुझान** को, जो कि अपने आप में सही है, एक **निष्पन्न तथ्य** के रूप में प्रतिज्ञापित करता है। जिस क्षण समाजवादी क्रान्ति शुरू हो जाती है, हमारे बरअक्स सभी दूसरी पार्टियां प्रतिक्रियावादी समूह **प्रतीत होने लगती हैं**। मुमकिन है कि वे ऐसी हो भी चुकी हों और किसी भी प्रगतिशील कार्रवाई की सभी क्षमता खो चुकी हों, लेकिन फिर भी यह अपरिहार्य नहीं है। लेकिन **वर्तमान क्षण में** हम ऐसा नहीं कह सकते, या कम से कम उस निश्चितता के साथ नहीं कह सकते, जिसके साथ हम अन्य कार्यक्रमपरक उसूलों की घोषणा करते हैं। यहां तक कि जर्मनी में भी ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं कि वाम पार्टियां भी, अपने निकम्मेपन के बावजूद, उस विराट बुर्जुआ-विरोधी, नौकरशाहाना और सामन्ती कचरे की सफाई के लिए **मजबूर** की जा सकती हैं, जो कि अभी भी वहां पड़ा हुआ है। और इस घटना में वे किसी भी तरह से प्रतिक्रियावादी नहीं हैं।*

''*जब तक हम स्वयं राज्यसत्ता की कमान अपने हाथ में लेने लायक और अपने उसूलों को लागू करने लायक मजबूती नहीं हासिल कर लेते, तबतक, दो टूक शब्दों में कहा जाये कि, **हमारे बरअक्स एक** प्रतिक्रियावादी समूह की बात नहीं की जा सकती। अन्यथा पूरा राष्ट्र एक प्रतिक्रियावादी बहुसंख्या और एक नपुंसक अल्पसंख्या में बंट जायेगा।*''' (*सेलेक्टेड करेस्पाण्डेंस, पृ. 409, मार्क्स-एंगेल्स, जोर मूल पाठ का*)

इसमें, हम वही वैज्ञानिक सुस्पष्टता देखते हैं कि जिसके साथ घोषणा-पत्र के लेखकों ने सामाजिक प्रश्नों की विवेचना की है। जबतक अन्य वर्गों का क्रान्तिकारी सामर्थ्य निश्शेष नहीं हो जाता, सर्वहारा वर्ग की पार्टी को उनके साथ मित्रता कायम करनी चाहिए और सामाजिक क्रान्ति को गति प्रदान करने के लिए उनकी जनवादी मांगों के इर्द-गिर्द उन्हें लामबन्द करना चाहिए।

सर्वहारा के अस्तित्व की स्थितियां ही इसे एक सम्पूर्णतः क्रान्तिकारी वर्ग बनाती हैं—

''*सर्वहारा वर्ग की मौजूदा अवस्था में पुराने समाज की अवस्थाओं का अब नाम-निशान तक बाकी नहीं रह गया है। सर्वहारा के पास कोई सम्पत्ति नहीं है; अपनी स्त्री और अपने बच्चों के साथ उसका जो सम्बन्ध है वह पूंजीवादी पारिवारिक सम्बन्धों से बिल्कुल ही भिन्न है। आधुनिक औद्योगिक श्रम ने, पूंजी के आधुनिक जुए ने—जो इंगलैण्ड, फ्रांस, अमेरिका और जर्मनी, सब जगह एक ही जैसा है—उसके राष्ट्रीय चरित्र के सभी चिन्हों का अंत कर दिया है। कानून, नैतिकता, धर्म—ये सब उसके लिए पूंजीवादी ढकोसले मात्र हैं, जिनकी ओट में घातक पूंजीवादी हित छिपे हुए हैं।*'' (*कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र* : **मार्क्स-एंगेल्स**)

मार्क्स ने स्वयं अपने स्पष्टीकरण के लिए (*'जर्मन विचारधारा'* में) लिखी गई टिप्पणियों में इस वर्ग के बारे में लिखा है कि यह ''*अब समाज में वर्ग के रूप में नहीं गिना जाता, वर्ग के रूप में नहीं पहचाना जाता, और वर्तमान समाज के अन्तर्गत, (यह) अपने आप में ही सभी वर्गों, राष्ट्रीयताओं आदि के विघटन की अभिव्यक्ति है।*''

जैसा कि एंगेल्स ने लिखा है, जर्मन दर्शन के बिना वैज्ञानिक कम्युनिज्म का अस्तित्व असम्भव होता। वास्तव में, द्वन्द्ववादी दर्शन के चलते ही उस वर्ग की क्रान्तिकारी सामर्थ्य की पहचान सम्भव हो सकी, जो एक पतित वर्ग प्रतीत होता था और जो मदद और हमदर्दी के लायक तो लगता था, पर अपने को मुक्त करने और स्वतंत्र कार्रवाई करने के योग्य कतई नहीं लगता था। जहां औरों को हताशा नजर आई, वहीं मार्क्स-एंगेल्स को आशा नजर आई, उस वर्ग में, जिसमें बुर्जुआ विश्व को कानून, नैतिकता, परिवार—इन सबका पतन दीख रहा था। यह बुर्जुआ समाज का वह वर्ग था जिसमें इस समाज का विघटन साकार हो रहा था। *'इंगलैण्ड में मजदूर वर्ग की दशा'* पुस्तक में एंगेल्स ने जिन स्थितियों पर गौर किया था, उसी के आधार पर घोषणा-पत्र में उपरोक्त नतीजे निकाले गये हैं। अंग्रेज सर्वहारा के बारे में इस पुस्तक का यह कहना है—

''ये मजदूर, सत्ताधारी वर्ग द्वारा, भौतिक, मानसिक और नैतिक तौर पर उपेक्षित और बहिष्कृत हैं। एकमात्र चीज जो उन्हें हासिल है, वह है—कानून। जब भी वे बुर्जुआ वर्ग के लिए अनिष्टकारी हो जाते हैं तो वह (कानून) उन्हें जकड़ लेता है। सबसे सुस्त जानवरों की तरह उन्हें भी शिक्षा देने का एकमात्र तरीका अपनाया जाता है—कोड़े के द्वारा, जो बल-प्रयोग के रूप में होता है और समझाने-बुझाने वाला नहीं बल्कि डराने-धमकाने वाला होता है। इसलिए, इसमें ताज्जुब की कोई वजह नहीं कि जिन मजदूरों के साथ जानवरों की तरह बर्ताव किया जाता है, वे वास्तव में वैसे ही हो जाते हैं, अथवा यदि वे अपने आदमी होने की चेतना को बनाये रख पाते हैं तो सिर्फ एक ही तरीके से—सत्ताधारी बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध सर्वाधिक उद्दीप्त घृणा और सर्वाधिक अटूट आन्तरिक विद्रोह की भावना पालकर। सत्ताधारी वर्ग के विरुद्ध जबतक उनके भीतर क्रोधाग्नि धधकती रहती है, तभी तक वे इंसान बने रह सकते हैं। जिस क्षण वे धैर्य के साथ जुए के नीचे झुक जाते हैं या जुए को तोड़ने की कोशिश छोड़कर जीवन को सहनीय बनाने के लिए हाथ-पांव मारना शुरू कर देते हैं, वैसे ही वे जानवर बन जाते हैं।'' (*द कण्डीशन ऑफ द वर्किंग क्लास इन इंगलैण्ड* : **एंगेल्स**, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, पृ. 137)

मजदूर वर्ग के पारिवारिक जीवन के बारे में एंगेल्स लिखते हैं :

''एक शब्द में, हमें यह मानना पड़ेगा कि मैंचेस्टर के मजदूरों के घरों में, जहां न सफाई है, न किसी तरह की सुविधा है और इसलिए जहां आरामदेह पारिवारिक जीवन असम्भव है, वहां केवल भौतिक रूप से पतित कोई जाति ही आराम और सुविधा महसूस कर सकती है, जो समस्त मानवता से रिक्त हो चुकी हो और नैतिक एवं भौतिक रूप से पशुता के स्तर तक नीचे उतर चुकी हो।'' (वही, पृ. 93)

पुनः आगे एंगेल्स लिखते हैं :

''पत्नी की नौकरी आवश्यक रूप से, और पूरीतरह से, परिवार को विघटित कर देती है और हमारे वर्तमान समाज में, जो कि परिवार पर आधारित है, इसका अभिभावकों और बच्चों पर नैतिक रूप से पतनकारी प्रभाव पड़ता है। एक मां, जिसके पास अपने बच्चे का खयाल करने के लिए, उसे उसके पहले साल के दौरान सर्वाधिक सामान्य प्यार तक दे पाने के लिए समय नहीं होता, जो उसे मुश्किल से ही देख पाती है, वह उस बच्चे के लिए वास्तविक मां नहीं हो सकती, वह अनिवार्यतः उसके प्रति असम्पृक्त हो जायेगी और उसके साथ बिना किसी प्यार के, बेगाने की तरह व्यवहार करने लगेगी। जो बच्चे इन परिस्थितियों में पलते-बढ़ते हैं वे आगे चलकर पारिवारिक जीवन के लिए पूरी तरह बर्बाद सिद्ध होते हैं, अपने खुद के ही बनाये परिवार में वे कभी भी सहज नहीं महसूस कर पाते क्योंकि वे हमेशा अलग-थलग रहने के आदी होते हैं और इस तरह वे मजदूर वर्ग के परिवारों की पहले से ही मौजूद आम अधोगति को और अधिक बढ़ाने में सहायक सिद्ध होते हैं। बच्चों के रोजगार में लगने से भी परिवार का इसीतरह से विघटन सामने आता है। बच्चों पर हर सप्ताह मां-बाप जितना खर्च करते हैं, जब वे आगे चलकर उससे ज्यादा कमाने लगते हैं तो मां-बाप को खाने-रहने के लिए एक निर्धारित रकम देने के बाद, बाकी अपने लिए रख लेते हैं... और अपने पैतृक आवास को भाड़े का मकान समझने लगते हैं, जिसे वे बेहतर विकल्प मिलने पर बदल भी देते हैं।'' (वही, पृ. 162)

बुर्जुआ समाज की परिस्थितियां शहरों में कामगार आबादी के केन्द्रीकरण को बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होती हैं और ''आबादी का यह केन्द्रीकरण यदि सम्पत्तिवान वर्ग को गति देता है और विकसित करता है, तो साथ ही मजदूरों को भी यह और अधिक तेजी से विकसित करता है। मजदूर, अपने को वर्ग के रूप में, एक समग्र इकाई के रूप में महसूस करने लगते हैं, उन्हें यह बोध होने लगता है कि हालांकि व्यक्तियों के रूप में वे कमजोर हैं, लेकिन एकताबद्ध रूप में वे एक ताकत हैं, बुर्जुआ वर्ग से अपना पृथक्करण वे स्पष्ट महसूस करने लगते हैं, जीवन में उनकी स्थिति के अनुरूप उनके दृष्टिकोण के विकास की गति तेज हो जाती है, उत्पीड़न की चेतना जाग उठती है और मजदूर सामाजिक एवं राजनीतिक महत्व हासिल कर लेते हैं। बड़े शहर मजदूर आन्दोलनों की जन्मभूमि होते हैं; पहले वहीं वे अपनी खुद की स्थितियों को प्रतिबिम्बित करना, और उनके विरुद्ध संघर्ष करना शुरू करते हैं; सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग के बीच का विरोध पहले वहीं अपने को प्रकट करता है; और यहां से ट्रेड यूनियनों, चार्टिज्म और समाजवाद की शुरुआत होती है। समाज के शरीर का जो रोग गांवों में दीर्घकालिक रोग के रूप में प्रकट होता है, बड़े शहर उसे तीव्र उभार वाले रोग में बदल देते हैं और इसतरह उसकी वास्तविक प्रकृति तथा उसे ठीक करने के साधनों को भी प्रकट कर देते हैं। बड़े शहरों, और लोक-प्रज्ञा पर उनके तेजी से विकसित होने वाले प्रभाव के बिना मजदूर वर्ग आज की अपेक्षा बहुत कम विकसित होता। साथ ही, बड़े पैमाने के मैन्युफैक्चर ने एक मालिक पर निर्भर कर्मचारियों की संख्या कई गुनी बढ़ा दी है जिसके परिणामस्वरूप बड़े शहरों में मजदूरों और मालिकों के बीच के पितृसत्तात्मक सम्बन्धों के अन्तिम अवशेष भी नष्ट हो चुके हैं। यह सही है कि बुर्जुआ वर्ग इन सारी चीजों पर अफसोस जताता है और उसके ऐसा करने के पर्याप्त कारण हैं; क्योंकि पुरानी स्थितियों के अन्तर्गत, बुर्जुआ वर्ग काम करने वाले हाथों की बगावत से अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित था। वह उनके ऊपर जुल्म ढा सकता था और उनके हृदय के सत्व तक को निचोड़ सकता था, और इसके बाद भी, संरक्षणात्मक दोस्तानापन के तुच्छ टुकड़े फेंककर, जिसका उसे कोई मोल नहीं चुकाना था, या कुछ तुच्छ उपहार देकर, जो ऊपरी तौर पर तो शुद्ध, आत्मत्यागी और अहेतुक अच्छाई भरे दिल से दिये जाते थे, पर वस्तुतः उसके कर्तव्य का दसवां भाग भी नहीं होते थे, पूंजीपति वर्ग इन बेवकूफ लोगों से बदले में आज्ञाकारिता, कृतज्ञता और सहमति हासिल कर सकता था। ... मजदूर का जब मालिक से कटाव हो जाता है, जब वह समझ जाता है कि मालिक और कामगार के बीच का एकमात्र रिश्ता आर्थिक मुनाफे का होता है, जब उनके बीच का भावनात्मक रिश्ता सबसे हल्की परीक्षा में भी खरा उतरने के बजाय पूरीतरह धराशायी हो जाता है, केवल तभी मजदूर अपने खुद के हितों को पहचानने की शुरुआत करता है और स्वतंत्रापूर्वक विकास करने लगता है; केवल तभी वह अपने चिन्तन, अनुभूतियों और अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति में बुर्जुआ वर्ग के गुलाम की स्थिति से मुक्त हो पाता है। और बड़े पैमाने के मैन्युफैक्चर और बड़े शहरों ने इस काम में सबसे अधिक बड़े पैमाने पर योगदान किया है।'' (वही, पृ. 143-44)

निश्चित तौर पर, *'इंगलैण्ड में मजदूर वर्ग की दशा'* पुस्तक की इन सारी बातों में से बहुतेरी ऐतिहासिक हैं और आज बहुत सारे देशों के सन्दर्भ में ये प्रासंगिक नहीं हो सकती हैं, बावजूद इसके, इनसे जो आम नतीजे निकाले गये और जिन्हें *'कम्युनिस्ट घोषणापत्र'* में शामिल किया गया, वे आज भी सही हैं। *'इंगलैण्ड में मजदूर वर्ग की दशा'* पुस्तक के 1892 के अंग्रेजी संस्करण की भूमिका में एंगेल्स ने स्वयं इंगित किया है:

''जहां तक इंगलैण्ड का सवाल है, इस पुस्तक में वर्णित स्थितियां आज, कई मायनों में अतीत की चीजें हो चुकी हैं। हालांकि हमारे प्रसिद्ध शोध-प्रबन्धों में इसका स्पष्ट तौर पर उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन यह अभी भी आधुनिक राजनीतिक अर्थशास्त्र का एक नियम है कि पूंजीवादी उत्पादन का पैमाना जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है, वैसे-वैसे वह चोरी और धोखेबाजी के उन क्षुद्र उपकरणों का कम इस्तेमाल करने लगता है, जो इसकी प्रारम्भिक मंजिलों की अभिलाक्षणिकता थे।''

''इसतरह पूंजीवादी प्रणाली पर आधारित उत्पादन का विकास, कम से कम नेतृत्वकारी उद्योगों में, खुद ही मजदूरों की उन तमाम शिकायतों को दूर कर देने की स्थिति में हो गया है, जो इसकी प्रारम्भिक मंजिलों में कामगारों का जीना दूभर बना देते थे; हालांकि उत्पादन की गौण शाखाओं के लिए यह आज भी सही नहीं है। और इसतरह, यह उस महान केन्द्रीय तथ्य को ही ज्यादा से ज्यादा स्वतः स्पष्ट बना रहा है कि मजदूर वर्ग की शोचनीय दशा का कारण इन छोटी मोटी परेशानियों में नहीं, बल्कि **स्वयं पूंजीवादी व्यवस्था** में निहित है।'' (पृ. 25 और 27, जोर मूल पुस्तक में)

हां, यही है सर्वहारा वर्ग की अवस्थिति, जिसके अस्तित्व की परिस्थितियां ही ऐसी हैं, जिनके नाते यही वह वर्ग है जो बुर्जुआ शासन को उखाड़ फेंक सकता है। पूंजीवाद के अन्तर्गत, अन्य सभी वर्ग टूटन और विघटन की प्रक्रिया से गुजरते होते हैं। अंशतः बुर्जुआ या मालिक होने के नाते वे बुर्जुआ वर्ग के साथ अपने हितों की एक सुनिश्चित साझेदारी महसूस करते हैं। मजदूर वर्ग की स्थिति और अवस्थिति में, आधिकारिक समाज, का अपना स्थापित ढांचा विघटित होता हुआ मालूम पड़ता है। यह वर्ग, जिसके शोषण पर बुर्जुआ समाज जिन्दा रहता है, लगभग बहिष्कृत होता है। बहुतेरे देशों में मजदूर वर्ग अपने संघर्षों के जरिए अपनी स्थिति को सुधारने में सफल रहा है लेकिन पूंजी के सम्बन्ध ही ऐसे हैं कि मजदूर श्रम-शक्ति का विक्रेता ही बना रहता है। काम करते समय मजदूर उजरती गुलाम के रूप में अपनी खुद की स्थिति का भी पुनरुत्पादन करता रहता है। आज, विश्व पूंजीवादी-साम्राज्यवादी व्यवस्था के संकट के दौर में, मजदूर वर्ग की अतीत की बहुतेरी उपलब्धियां भी छिनती जा रही हैं। स्थिति एक बार फिर उलटती हुई दीख रही है। विश्व क्रान्ति के ऊर्ध्वमुखी विकास और मजदूर राज्यों की सफलता ने बुर्जुआ वर्ग को कल्याणकारी राज्यों की स्थापना के लिए मजबूर किया था, जो वर्ग-सहयोगवादी सामाजिक-जनवादियों के सच्चे आश्रय रहे हैं। अब प्रतिक्रान्ति के चरमोत्कर्ष पर पहुंचने के साथ ही बुर्जुआ वर्ग इन कल्याणकारी राज्यों को आक्रामक ढंग से तोड़ रहा है और जिन मजदूरों ने दलिया के कटोरे के लिए क्रान्तिकारी संघर्षों को तिलांजलि

(पेज 5 पर जारी)

आधुनिक समाज का क्रान्तिकारी वर्ग—सर्वहारा

(पेज 4 से आगे)

दे दी थी, उन्हें सिर्फ निराशा ही हाथ लग रही है (यहां तक कि ब्रिटेन की लेबर पार्टी भी ''नई लेबर पार्टी'' बन गयी है और टोरियों की कार्बन-कापी बन गई है तथा उसमें यूनियनों की ताकत को किनारे धकेल दिया गया है)। इंगलैण्ड के मजदूरों द्वारा मजदूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन के परित्याग को वास्तव में एंगेल्स ने ही देख लिया था :

''...इंगलैण्ड के औद्योगिक इजारेदारी के काल में अंग्रेज मजदूर वर्ग ने, एक हद तक, इजारेदारी के लाभों में हिस्सा बंटाया। ये लाभ उनके बीच अत्यन्त असमान ढंग से वितरित हुए; विशेषाधिकार-सम्पन्न अल्पसंख्या को सर्वाधिक मिला, लेकिन व्यापक जन समुदाय को भी, जब-तब, कम से कम, एक अस्थायी हिस्सा मिलता रहा। और यही कारण है कि ओवेनपंथ की मृत्यु के बाद से इंगलैण्ड में कोई समाजवाद नहीं है।'' (वही)

आगे चलकर, लेनिन ने बताया कि सुधारवाद और संशोधनवाद का सामाजिक आधार कुलीन मजदूरों में मौजूद है। ये कुलीन मजदूर यूरोप के मजदूर वर्ग के वे हिस्से थे जो पूरी दुनिया, विशेषकर उपनिवेशों के शोषण से अतिलाभ निचोड़ने वाले साम्राज्यवादी बुर्जुआ वर्ग द्वारा विश्वव्यापी लूट में से फेंके गये टुकड़े के रूप में हिस्सा पाते थे। अब पालतू मुर्गे दड़बों में आराम कर रहे हैं। क्रान्तिकारी संघर्ष के परित्याग ने, खासकर साम्राज्यवादी देशों में मजदूर वर्ग को बधिया बना डाला है, जिसे अब बुर्जुआ वर्ग के हमलों का सामना करना पड़ रहा है। हमारे देश के संगठित मजदूर वर्ग के सामने भी यही चुनौती खड़ी है। यदि आज यह अपने ऐतिहासिक मिशन को हाथ में नहीं लेगा तो इसे अपमानजनक आत्मसमर्पण के लिए झुक जाना पड़ेगा। यह समय है कि मार्क्स के इन प्रसिद्ध शब्दों को याद किया जाये—मजदूर वर्ग या तो क्रान्तिकारी होता है या फिर कुछ नहीं होता है।

मजदूर वर्ग बुर्जुआ समाज में एक वर्ग के रूप में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए सत्ता नहीं हासिल करता। बुर्जुआ वर्ग ने और उन सभी वर्गों ने, जिन्होंने सत्ता हासिल की, पूर्ववर्ती समाज में पहले से ही हासिल अपनी हैसियत को मजबूत बनाने का काम किया। वे उत्पादक शक्तियों के स्वामी बन गये थे और उन्होंने उत्पादन और विनियोजन की अपनी प्रणली को स्थापित करने की कोशिश की थी, जो पुराने समाज में ही एक हद तक विकसित हो चुकी थी। लेकिन सर्वहारा वर्ग के पास एक वर्ग के रूप में अपना ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसकी सुरक्षा करनी हो। यह विनियोजन की अपनी प्रणाली का शासन स्थापित करने की कामना करने वाला विनियोजक अथवा शोषक वर्ग नहीं है। यह बुर्जुआ समाज के एक वर्ग के रूप में अपनी वर्तमान स्थितियों को समाप्त करके ही अपने को मुक्त कर सकता है। ऐसा वह शोषित वर्ग के रूप में अपने अस्तित्व की स्थितियों का खात्मा करके, यानी पूंजी के राज्य का खात्मा करके ही कर सकता है।

इसकी मुक्ति की यही शर्त इसे आधुनिक समाज का सबसे क्रान्तिकारी वर्ग बनाती है कि इसे पूंजीवाद को समाप्त कर देना है जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित अन्तिम सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था है। निश्चित तौर पर, ''सर्वहाराओं के पास अपनी बेड़ियों के सिवा खोने के लिए कुछ नहीं है। जीतने के लिए उनके सामने सारी दुनिया है।''

('प्रोलेतारियन पाथ', नवम्बर '99 से साभार)

कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र से

अभी तक, जैसा कि हम देख चुके हैं, हर तरह का समाज उत्पीड़क और उत्पीड़ित वर्गों के विरोध पर कायम रहा है। लेकिन किसी भी वर्ग का उत्पीड़न करने के लिए यह जरूरी है कि उसे कम से कम ऐसी सुविधाएं दी जायें जिनसे और न सही तो, एक गुलाम वर्ग के रूप में, वह जिन्दा रह सके। भू-दास व्यवस्था के युग में भूदास ने उन्नति कर कम्यून की सदस्यता हासिल कर ली थी, उसी तरह जैसे सामन्ती निरंकुशता के जुए के नीचे निम्न-पूंजीपति पूंजीपति बन गया था। लेकिन आधुनिक मजदूर की दशा बिल्कुल उल्टी है। उद्योग की उन्नति के साथ, ऊपर उठने के बजाय, वह स्वयं अपने वर्ग के अस्तित्व के लिए आवश्यक अवस्थाओं के स्तर के नीचे गिरता जाता है। वह कंगाल हो जाता है और उसकी मुफलिसी आबादी और दौलत से भी ज्यादा तेजी से बढ़ती है। ऐसी स्थिति में यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि पूंजीपति वर्ग अब समाज का शासक बना रहने और समाज पर अपने अस्तित्व की अवस्थाओं को, अनिवार्य नियम के रूप में लादने के अयोग्य है। पूंजीपति वर्ग शासन करने के अयोग्य है क्योंकि वह अपने गुलाम को गुलामी की हालत में जिन्दा रखने की गारण्टी देने में अशक्त है, क्योंकि वह उसके जीवन-स्तर में ऐसी गिरावट नहीं रोक सकता जिसके फलस्वरूप वह उसकी कमाई खाने के बजाय उसका पेट भरने को मजबूर हो जाता है। समाज इस पूंजीपति वर्ग के मातहत अब नहीं रह सकता—दूसरे शब्दों में, पूंजीपति वर्ग का अस्तित्व अब समाज से मेल नहीं खाता।

पूंजीपति वर्ग के अस्तित्व और प्रभुत्व की लाजिमी शर्त पूंजी का निर्माण और वृद्धि है; और पूंजी की शर्त है उजरती श्रम। उजरती श्रम पूर्णतया मजदूरों की आपसी होड़ पर निर्भर है। उद्योग की उन्नति, जिसे पूंजीपति वर्ग अनिवार्यत: अग्रसर करता है, होड़ के कारण उत्पन्न मजदूरों के अलगाव की जगह पर उनका संसर्गजनित क्रान्तिकारी एका कायम कर देती है। इसतरह आधुनिक उद्योग का विकास पूंजीपति वर्ग के पैरों के नीचे से उस जमीन को ही खिसका देता है जिसके आधार पर वह उत्पादन करता है और पैदावार को हड़प लेता है। अत: पूंजीपति वर्ग सर्वोपरि अपनी कब्र खोदने वालों को पैदा करता है। उसका पतन और सर्वहारा वर्ग की विजय दोनों समान रूप से अनिवार्य है।

—मार्क्स-एंगेल्स

(कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र)

इन हड़तालों की असफलता से सबक लेकर लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी!

(पेज 1 से आगे)

वचन दे चुकी है।

भारी ''घाटे'' के नाम पर प्रदेश सरकार द्वारा बोर्ड को तीन टुकड़े में बांटने के निर्णय के साथ ही बिजली उत्पादन और वितरण को देशी-विदेशी पूंजीपतियों को सौंप देने का रास्ता साफ हो गया था। प्रदेश के मुख्यमंत्री राम प्रकाश गुप्त ने सगर्व घोषणा की कि विद्युत दरों की बढ़ोत्तरी प्रतिवर्ष 16 प्रतिशत (यानी इस वर्ष 25 पैसे) से अधिक नहीं होगी! हालांकि विश्व बैंक की सिफारिश पर, राज्य सरकार बिजली की दर न्यूनतम चार रुपये पचहत्तर पैसे प्रति यूनिट करने की तैयारी में है। और यह सबकुछ ''जनता के प्रति वचनबद्धता निभाने'' के लिए किया जा रहा है।

यह किस ''जनता'' के प्रति ''वचनबद्धता'' है? यह वचनबद्धता है देश के पूंजीपतियों, विदेशी मुनाफाखोरों और उनके हितपालक विश्व बैंक जैसी संस्थाओं के प्रति, जिन्हें करोड़ों-करोड़ की राजकीय सम्पत्ति कौड़ियों के भाव मिल जायेगी और विपुल प्राकृतिक संसाधनों पर भी जिनका कब्जा हो जायेगा। बिजली बोर्ड को अपने खून-पसीने से सींचकर खड़ा करने वाले बिजली कर्मचारियों या आम जनता के प्रति धनपतियों की सरकार की कोई प्रतिबद्धता नहीं है। इस ''वचनबद्धता'' को पूरा करने के लिए बेहयाई के साथ झूठे आंकड़े पेश किये जाते रहे, कर्मचारियों को झांसा दिया जाता रहा और विरोध करने पर बर्बर दमन किया गया।

सरकार का तर्क है कि बिजली संकट को दूर करने के लिए पूंजी निवेश की कमी है। बोर्ड का सारा पैसा कर्मचारियों की तनख्वाहों और एम.टी.पी.सी. से बिजली खरीदने में खर्च हो जाता है। इसलिए इस कमी को पूरा करने के लिए निजी हाथों में सौंपने के अलावा कोई रास्ता नहीं है। तो क्या बिजली उत्पादन और वितरण को पूंजीपतियों को सौंप देने से ''घाटे'' की भरपाई करने के लिए दानी-महात्माओं की तरह अपनी तिजोरी से पूंजी निकालकर दान कर देंगे?

दरअसल, बिजली बोर्ड के घाटे की भरपाई के लिए बिजली दरों में बढ़ोत्तरी करने का अधिकार पत्र विद्युत नियामक प्राधिकरण को पहले ही सौंपा जा चुका है। अब कर्मचारियों की छंटनी की जायेगी। स्वैच्छिक अवकाश योजना के तहत उन्हें जबरिया रिटायर किया जायेगा। नये निगम, ''बोझ'' बने कर्मचारियों की छंटनी के बाद विभाग को मुनाफा बटोरने की स्थिति में पहुंचा कर इन्हें पूंजीपतियों को सौंप देंगे तब जाकर और ज्यादा मुनाफा निचोड़ने के लिए नये मालिक पूंजी निवेश करेंगे, नयी-नयी तकनीक लायेंगे, दाम बढ़ायेंगे।

हजारों कर्मचारियों की गिरफ्तारी, घरों पर छापे और बर्बर दमन के बाद सरकार आखिरकार हड़ताल खतम कराने में सफल हो गयी। कर्मचारियों को कुल यह हासिल हुआ कि एक वर्ष तक पुनर्गठन का प्रस्ताव टल गया। इतने के लिए भी सरकार तब राजी हुई जब हड़ताली विद्युतकर्मियों के समर्थन में उत्तर भारत के छह राज्यों के विद्युतकर्मियों ने कलमबंद-औजारबंद आन्दोलन शुरू कर दिया। आल इण्डिया पावर इंजीनियर्स फेडरेशन ने सरकार के अड़ियल रुख और कोई समाधान न निकलने की स्थिति में 24 जनवरी से देशव्यापी हड़ताल की चेतावनी दे दी। हड़ताली विद्युतकर्मियों के परिवारजनों—विशेषतया स्त्रियों ने समर्थन में आन्दोलन में हिस्सेदारी शुरू कर दी और पुलिस के 'रैपिड एक्शन फोर्स' का भी डटकर मुकाबला किया।

लेकिन यह साफ है कि साल भर की राहत के सिवा कर्मचारियों को कुछ भी हासिल नहीं हुआ है। सरकार इस बात मनवाने में सफल हो गयी है कि पुनर्गठन (यानी निजीकरण) को उन्हें अंतत: स्वीकार करना ही होगा।

इस पूरी हड़ताल के दौरान देश के ट्रेड यूनियन आन्दोलन की चिरपरिचित कमजोरी एक बार फिर उभर कर सामने आयी। बिजली बोर्डों के घाटे की असलियत और निजीकरण को लेकर जनता के बीच फैले भ्रम को दूर करने के लिए कोई कोशिश नहीं की गयी। आन्दोलन के मुद्दों से जनता को जोड़ने की न तो कोई योजना थी और न कोई प्रयास। इस बात को जनता के बीच प्रचारित करने के लिए कोई गम्भीर प्रयास नहीं किये गये कि बिजली तंत्र के निजीकरण की प्रस्तावित योजना विश्व बैंक के आदेश पर लागू की जा रही है और सरकार विश्व बैंक को वचन दे चुकी है कि वह हर कीमत पर इस बार निजीकरण कर देगी। ''इंडिया-उत्तर प्रदेश पावर सेक्टर रिस्ट्रक्चरिंग प्रोजेक्ट'' नामक विश्व बैंक के इस दस्तावेज की खास-खास बातें लोगों को बताई जातीं तो यह साफ हो जाता कि केन्द्रीय ऊर्जा मंत्री कुमार मंगलम से लेकर मुख्यमंत्री रामप्रकाश गुप्ता और ऊर्जा मंत्री नरेश अग्रवाल किसकी भाषा बोल रहे हैं और किसका हित साधने के लिए सख्ती दिखा रहे हैं।

वे जनता को यह भी नहीं बता पाए कि इस बार उनकी लड़ाई अपने लिए वेतन-भत्तों में बढ़ोत्तरी के लिए नहीं बल्कि ऐसे मुद्दे को लेकर है जिसके साथ पूरी जनता का हित जुड़ा हुआ है।

विघटन निजीकरण की इस प्रक्रिया को कंवल एक सूरत में टाला जा सकता था। यदि बिजली विभाग के मजदूरों-कर्मचारियों ने उदारीकरण-निजीकरण के शिकार अन्य विभागों के कर्मचारियों के साथ मिलकर इन जन-विरोधी नीतियों के खिलाफ एकजुट होकर एक लम्बी लड़ाई का कार्यक्रम बनाकर हल्ला बोला होता तब शायद ऐसी नौबत ही न आती। इसका सारा दारोमदार उन ट्रेड यूनियन नेताओं का है जो सिर्फ वेतनभत्तों और ट्रांसफर पोस्टिंग आदि के लिए 'इंकलाब जिन्दाबाद', 'मजदूर एकता जिन्दाबाद' और अपने नाम के नारे लगवाते रहे। पूरी मजदूर कौम को सिर्फ ''दलिया के कटोरे'' के लिए लड़ने तक सीमित रहे। उसे कभी भी अपने राजनीतिक अधिकारों का अहसास तक नहीं कराया। कभी न तो कोई राजनीतिक शिक्षा दी और न ही उसके आन्दोलन को जनता के दूसरे तबकों तथा दूसरे क्षेत्रों के अपने मजदूर भाइयों के आन्दोलनों से जोड़ने का प्रयास किया। आने वाले तूफान से बेखबर होकर आम कर्मचारी मजदूर भी बोनस मंहगाई भत्ते और एरियर ही जोड़ते रहे। यह कहानी पिछले दिनों बार-बार दोहरायी गई। चाहे डाक-तार कर्मियों की हड़ताल हो, बैंक-बीमा कर्मचारियों का आन्दोलन हो, चाहे लखनऊ में अपट्रान के मजदूरों का, या चाहे चीनी मिलों और कपड़ा मिलों के मजदूरों का आन्दोलन रहा हो।

अब लड़ाई किसी एक विभाग या कारखाने या सेक्टर के मजदूर-कर्मचारी लड़कर नहीं जीत सकते। पुरानी गलतियों की कीमत किसी न किसी रूप में चुकानी ही पड़ेगी। लड़ाई अब ज्यादा कठिन और लम्बी हो गई है। देश के कर्मचारियों-मजदूरों की विशाल सेना सेनापतियों के विश्वासघात के कारण बार-बार हारती रही है। अपनी पिछली गलतियों और विश्वासघातों के इतिहास से सबक लेते हुए अब विद्युत विभाग में कार्यरत सभी बहादुर जागरूक साथियों को अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने के लिए बिखरी हुई सेनाओं को फिर से एकजुट करने का बीड़ा उठाना होगा। सभी कर्मचारी-मजदूर साथियों को अपने अस्तित्व के संघर्षों के साथ ही इन नीतियों के शिकार दूसरे विभाग के कर्मचारियों-मजदूरों के साथ भी एकजुटता कायम करनी होगी। साझा संघर्ष की नई रणनीति बनानी होगी। अपने संघर्ष को जनविरोधी आर्थिक नीतियों—उदारीकरण-निजीकरण की सम्पूर्ण नीतियों के खिलाफ केन्द्रित करना होगा। सरकारी-अर्द्ध सरकारी सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों-मजदूरों को देश के असंगठित मजदूरों की भारी आबादी को, तबाह हो रहे छोटे किसानों को, बेरोजगारी की मार झेल रहे नौजवानों और शिक्षा को अमीरजादों की बपौती बनाने वाली नीतियों के खिलाफ संघर्षरत छात्रों को भी अपनी लड़ाई का हिस्सेदार बनाना होगा।

दुनिया के लुटेरों ने एकजुटता कायम कर ली है, अब मेहनत करने वालों को भी एकजुटता कायम करनी होगी। मजदूर आन्दोलन के भितरघातियों से सचेत होना होगा और अपने संघर्षों को क्रान्तिकारी धार देनी होगी तभी कोई छोटी भी लड़ाई जीती जा सकती है और बड़ी विजय की ओर बढ़ा जा सकता है।

बिजली बोर्ड का घाटा : कुछ आंखें खोलने वाले तथ्य

- एक अध्ययन के अनुसार बिजली बोर्डों के घाटे के तीन सबसे बड़े स्रोत हैं:
  1. सरकारी विभागों और निगमों पर अरबों का बकाया
  2. उद्योगपतियों को दी जाने वाली भारी सब्सिडी और चोरी (बेहद सस्ती दर पर बिजली मिलने के बाद भी ये वर्षों तक भुगतान नहीं करते और प्राय: कानूनी दांव-पेंच के सहारे इससे छुटकारा पा लेते हैं; और
  3. भ्रष्ट नौकरशाहों और मंत्रियों की अंधाधुंध कमाई

अध्ययन के अनुसार यदि इन तीनों पर रोक लगाई जा सके तो घरेलू बिजली आपूर्ति मुफ्त या बहुत सस्ती की जा सकती है।

- दिल्ली विद्युत बोर्ड की एक रिपोर्ट (इंडियन एक्सप्रेस, 16 जनवरी में प्रकाशित) के अनुसार बिजली की सबसे ज्यादा चोरी पॉश कालोनियों और औद्योगिक इकाइयों में की जाती है। पिछले 15 नवम्बर से 31 दिसम्बर के बीच दिल्ली के धनपतियों के रिहायशी इलाकों और कारखानों में बिजली चोरी के 385 मामले पकड़े गये। इन सबसे 10 किलोवाट से ऊपर का कनेक्शन था। सरकार हल्ला मचाती है कि झुग्गी बस्तियों में अवैध कनेक्शनों के कारण घाटा है, पर इस रिपोर्ट के मुताबिक कुल चोरी का 25 प्रतिशत भी झुग्गी बस्तियों में नहीं होता है।

- विश्व बैंक की जिस रिपोर्ट—'भारत : उत्तर प्रदेश ऊर्जा क्षेत्र पुनर्गठन परियोजना'—के आधार पर बिजली बोर्ड का पुनर्गठन किया जाने वाला है, उसी में, आज से 4 वर्ष पहले यह सिफारिश की गई थी कि घरेलू बिजली का दाम पांच रुपये प्रति यूनिट से कम कतई नहीं रखा जाना चाहिए।

जनमुक्ति की अमर गाथा : चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग-दो)

विद्रोहों से क्रान्ति की ओर : क्रान्ति की हिरावल पार्टी की स्थापना

❶ चीनी क्रान्ति के महान नेता माओ त्से-तुङ भी 4 मई आन्दोलन के आसपास ही मार्क्सवाद के सम्पर्क में आये थे।

माओ का जन्म हूनान प्रान्त के शाओ-शान गांव के एक किसान परिवार में हुआ था। बाल शिक्षा एक गुरुकुल से प्राप्त करने के बाद, 1909 में सोलह वर्ष की उम्र में आगे की पढ़ाई के लिए सियांङ-सियाङ काउण्टी में पढ़ने के लिए भेज दिये गये। 1911 से लेकर 1918 तक उन्होंने च्याङशा में अध्ययन किया और स्नातक उपाधि प्राप्त की। 1911 की क्रान्ति के पश्चात उन्होंने आधे साल तक नई विद्रोही सेना में काम भी किया। च्याङशा में युवा माओ त्से-तुङ ने चीनी ''पुरातन विद्या'' और ''नूतन विद्या'' के साथ-साथ तोल्स्तोय, क्रोपाटकिन, प्राचीन ग्रीक दर्शन, कांट, हेगेल, नवकांटवादी दर्शन, नव हेगेलवादी दर्शन, रूसो, जॉन स्टुअर्ट मिल, डार्विन, एडम स्मिथ आदि की रचनाओं का अध्ययन करने के साथ ही, खुद अपने ही शब्दों में ''पहली बार दुनिया का मानचित्र देखा और गहरी दिलचस्पी के साथ उसका अध्ययन किया। दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीति का अध्ययन करते हुए माओ और उनके कुछ युवा साथी अपने देश और दुनिया की राजनीतिक उथल-पुथल पर भी निगाह रक्खे हुए थे और चीन की मुक्ति के रास्ते पर प्रश्न पर लगातार चिन्तन-मनन कर रहे थे।

❷ च्याङशा में ही माओ ने पहली बार मार्क्स और एंगेल्स की महान ऐतिहासिक कृति 'कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र का अध्ययन किया। 1917 में माओ ने कुछ युवा कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर ''नव लोक अध्ययन समाज'' नामक ग्रुप की स्थापना की जो अफीम, जुआ, शराबखोरी, वेश्यावृत्ति और भ्रष्टाचार का विरोध करता था, स्त्रियों को समानता का दर्जा देने की हिमायत करता था और ''चीन और पूरी दुनिया में सुधार लाने'' को अपना उद्देश्य मानता था। ग्रुप के लोग मजदूरों की रात्रि-पाठशालाएं भी चलाते थे, जिनमें माओ इतिहास पढ़ाते थे, सामयिक विषयों पर बातचीत करते थे और मजदूरों को अखबार पढ़कर सुनाते थे।

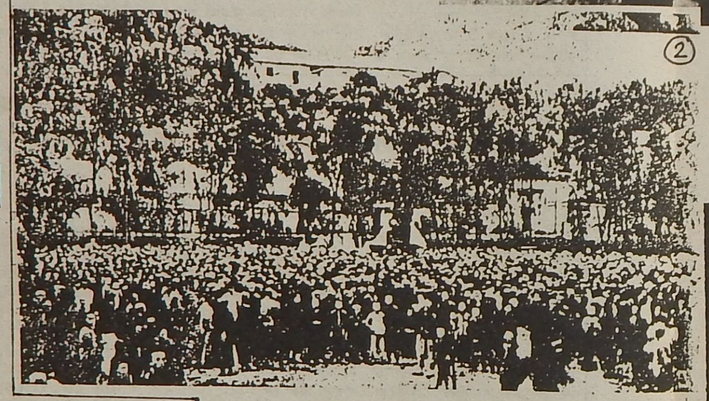

चित्र परिचय

1. आनयुआन के खदान मजदूरों को सम्बोधित करते हुए माओ त्से-तुङ
2. आनयुआन के खदान और रेलवे मजदूर सितम्बर 1922 की हड़ताल के बाद विजयसभा करते हुए
3. पीकिङ के निकट मेनताकाउ खदान का एक चौदह वर्षीय मजदूर
4. माओ त्से-तुङ, कैन्टन में, 1925 का चित्र
5. बोल्शेविक क्रान्ति
6. माओ त्से-तुङ (बाएं से दूसरे) पहले हुनान नार्मल स्कूल के विद्यार्थियों के साथ
7. माओ त्से-तुङ एवं चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की हुनान शाखा
8. माओ को मार्क्सवाद के करीब लाने वाले और उनके पहले क्रान्तिकारी शिक्षक ली ता-चाओ
9. शंघाई का वह मकान जहां चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की पहली कांग्रेस जुलाई 1921 में शुरू हुई थी
10. शंघाई की वह झील जहां पर नाव में पहली कांग्रेस का समापन सत्र सम्पन्न हुआ
11. माओ के करीबी दोस्त चाङशा के त्साइ हो-सेन
12. माओ त्से-तुङ (दाएं से पहले) चाङशा में अपनी मां और दो भाइयों माओ त्से-मिन (बाएं से दूसरे) और माओ त्से-थान के साथ। उनके दोनों भाइयों ने क्रान्ति के लिए अपने जीवन का बलिदान कर दिया था।

❸ 1917 में रूसी मजदूर वर्ग ने पहले जार का और फिर पूंजीपतियों-मध्यमार्गियों की अस्थायी सरकार का तख्ता पलट दिया और इतिहास में पहली बार मजदूर-राज्य कायम हुआ। सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत एकदम नये किस्म की राज्यसत्ता यानी समाजवादी राज्यसत्ता अस्तित्व में आई। पूरी दुनिया के तमाम मेहनतकशों और उत्पीड़ित राष्ट्रों की जनता की ही तरह चीन की जनता तक भी इस नई क्रान्ति की रोशनी पहुंची। चीन के कुछ विद्रोहियों-क्रान्तिकारियों ने भी समाजवाद का अध्ययन शुरू कर दिया। स्वयं माओ के ही शब्दों में, ''अक्टूबर क्रान्ति के तोपों के धमाकों ने... हमारे तक मार्क्सवाद-लेनिनवाद को पहुंचाया।'' चीन में सोवियत क्रान्ति और मार्क्सवाद के पहले प्रचारक बुद्धिजीवी ली ता-चाओ थे। 1918 में माओ पीकिङ विश्वविद्यालय पुस्तकालय में उनके असिस्टेण्ट की नौकरी करने लगे। वे ली के मार्क्सवादी अध्ययन केन्द्र के सदस्य बन गये और उनके द्वारा अनुवादित मार्क्स और लेनिन की रचनाओं का अध्ययन करने लगे। स्वयं माओ के शब्दों में, ''ली ता-चाओ के मार्गदर्शन में मैं मार्क्सवाद की ओर तेजी से आगे बढ़ा।'' पीकिङ में ही माओ ने याङ काई-हुइ से प्रेम-विवाह किया जो बारह वर्षों तक क्रान्ति में हमसफर रहीं। 1930 में कुओमिन्ताङ के सरकारी भाड़े के सैनिकों ने उनकी हत्या कर दी, पर मृत्युपर्यंत वे अपने उसूलों पर अडिग रहीं।

Li Ta-chao

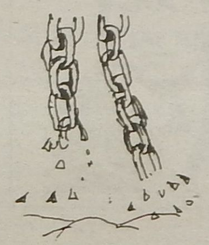

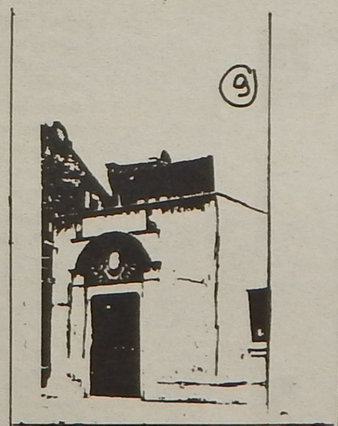

❹ अप्रैल, 1919 में माओ शिक्षक के रूप में काम करने च्याङशा वापस आ गये। वहां उन्होंने कारखानों और रेलवे यार्डों में मजदूरों को संगठित किया। इसतरह पहली बार वे हूनान में मार्क्सवाद लाये। उन्होंने वहां प्रथम मार्क्सवादी अध्ययन-मण्डलों की स्थापना की। 4 मई आन्दोलन की खबर मिलने पर माओ और उनके साथियों ने हूनान में भी हड़तालें संगठित कीं और छात्रों की यूनियनें बनाईं। च्याङशा के मार्क्सवादी स्टडी ग्रुपों में माओ दुनिया की घटनाओं पर देश की समस्याओं पर और सामाजिक प्रश्नों आदि पर अपने वक्तव्य रखते थे और लेख लिखते थे। ''मार्क्सवाद और क्रान्ति'' शीर्षक में अपने ऐसे ही एक भाषण के अन्त में उन्होंने यह कहा था कि केवल मार्क्सवाद का अध्ययन करके ही चीनी जनता अपने को बचा सकती है।

1920 तक यह स्पष्ट होने लगा था कि महज मार्क्सवादी अध्ययन-मण्डल ही काफी नहीं हैं और यह कि चीन की जनता को एक हिरावल सर्वहारा पार्टी की जरूरत है। ली ता-चाओ एक संगठनकर्ता के रूप में माओ की शानदार क्षमताओं से परिचित थे। उन्होंने माओ से एक नई पार्टी-रूप कम्युनिस्ट पार्टी के लिए सदस्यों की भरती में मदद करने का आग्रह किया। फरवरी, 1920 में कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल (दुनिया भर के कम्युनिस्टों का नेतृत्वकारी संगठन) के दो सदस्य चीन में कम्युनिस्ट पार्टी गठित करने के सवाल पर बातचीत करने पीकिङ पहुंचे। अब इसके बाद माओ का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काम था स्वसर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी में भरती के लिए लोगों को छांटना और तैयार करना। उन्होंने कहा : ''हमें बेहद सावधानी के साथ भरोसेमन्द लोगों का, जिम्मेदार कामरेडों का चुनाव करना होगा।'' माओ और कुछ अन्य साथी क्रान्तिकारियों ने 'रूसी मामलों के स्टडी ग्रुप' की स्थापना की और बहुतेरे छात्रों को पढ़ने और काम करने के लिए रूस भेजा। 1920 के अंत में माओ ने समाजवादी युवा वाहिनी की हूनान शाखा की स्थापना की जो 1922 तक चीन का ऐसा सबसे बड़ा संगठन बन चुका था जिसके दो हजार सदस्य थे। 1920 में ही, चीन के दूसरे इलाकों में भी कम्युनिस्ट संगठन और प्रकाशन स्थापित होने लगे थे। युवा कम्युनिस्ट संगठनकर्ता विभिन्न शहरों में मजदूरों की सांध्य कक्षाएं चलाते थे और ट्रेड यूनियनें संगठित करते थे। अप्रैल, 1921 तक चीन के विभिन्न शहरों के अतिरिक्त मास्को, बर्लिन, पेरिस और जापान में पढ़ने गये चीनी छात्रों के बीच भी कई मार्क्सवादी स्टडी-ग्रुप स्थापित हो चुके थे। माओ त्से-तुङ, जो स्वयं चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापकों में से एक थे, जुलाई 1921 में पार्टी की प्रथम कांग्रेस में शामिल हुए।

... पृष्ठ 8 पर जारी

जनमुक्ति की अमर गाथा : चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा

... पृष्ठ 7 का शेष

5 मई, 1921 में माओ और उनके एक मित्र च्याङशा से व्यापारी के भेस में शंघाई के लिए रवाना हुए जहां पार्टी की स्थापना-कांग्रेस होनी थी। पूरे चीन में उससमय कुल सत्तावन मार्क्सवादी थे। सबसे बड़ा ग्रुप हुनान का था जिसमें 16 मार्क्सवादी थे। जिन प्रान्तों में मार्क्सवादी अध्ययन-ग्रुप संगठित थे, उन सबने दो-दो प्रतिनिधि प्रथम कांग्रेस में भेजे। कांग्रेस में कुल बारह प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

21 जुलाई को पो-आई कन्या विद्यालय में, जो गर्मी की छुट्टियों के कारण बन्द था, कांग्रेस की शुरुआत हुई। मेहमानों के लिए खाना लाने वाले, स्कूल में रसोइया व चौकीदार का काम करने वाले आदमी ने लोगों को जब अलग-अलग इलाकों की बोली में बात करते सुना तो उसे शक हुआ और उसकी सूचना पर पुलिस सतर्क हो गई। कांग्रेस स्थल के पास के कमरे में किसी और मीटिंग के बारे में पूछता हुआ एक संदिग्ध व्यक्ति आया। इससे चौकन्ने प्रतिनिधियों ने तत्काल वह जगह छोड़ दी। कुछ ही देर बाद वहां पुलिस ने छापा मारा पर उसे कुछ भी हाथ न लगा।

प्रतिनिधियों ने शंघाई से अस्सी मील दूर दक्षिणी झील में एक नाव किराये पर लेकर वहां अपनी मीटिंग जारी रखी। गम्भीर बहसों, संघर्षों, मतभेदों से भरपूर कांग्रेस चार दिनों तक चली। कांग्रेस में कुछ प्रतिनिधि दक्षिणपंथी लाइन के थे। उनका कहना था कि चीन का मजदूर वर्ग अभी "काफी कम उम्र" है और कम्युनिस्ट पार्टी गठित करने के लिए "तैयार नहीं है।" वे चाहते थे कि अभी सिर्फ विचार-विमर्श के लिए मार्क्सवादी अध्ययन केन्द्र ही बनाये जायें। कुछ दूसरे प्रतिनिधि अति वामपंथी भटकाव के शिकार थे। वे संघर्ष के कानूनी रूपों का तथा दूसरी पार्टियों या वर्ग-तत्वों के साथ एकता कायम करने का विरोध करते थे। माओ ने इनमें से किसी पक्ष का साथ नहीं दिया। कांग्रेस में अति वामपंथी लाइन हावी रही। माओ ने स्वीकृत प्रस्ताव के विरुद्ध मत दिया। माओ को पार्टी-कांग्रेस का सेक्रेटरी चुना गया और हुनान वापस लौटने के बाद उन्हें नवगठित कम्युनिस्ट पार्टी की हुनान शाखा का अध्यक्ष चुन लिया गया।

चीन के मजदूरों-किसानों के पास अब अपनी एक हिरावल पार्टी थी और मार्क्सवाद का विज्ञान था। किसान विद्रोहों से क्रान्ति में संक्रमण के लिए जरूरी शर्त अब उन्हें हासिल हो चुकी थी। राज्यसत्ता हासिल करने की पहली गारण्टी अब उनके पास थी।

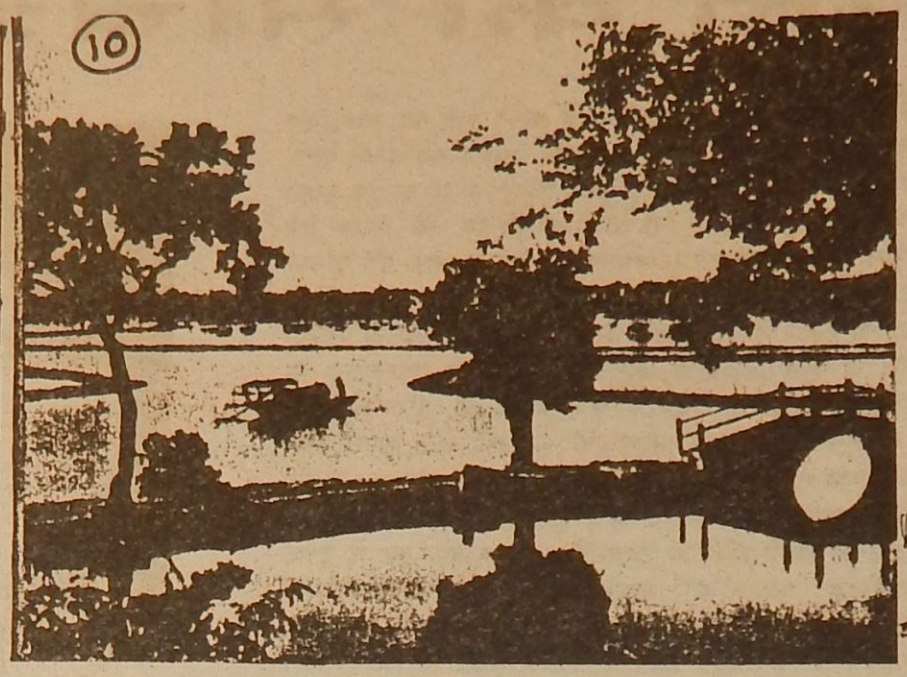

6 हुनान लौटने और वहां की पार्टी-शाखा के सेक्रेटरी का कार्यभार सम्भालने के बाद माओ ने पार्टी में मजदूरों की भरती की मुहिम चलायी। वे हुनान में मजदूरों की पहली कम्युनिस्ट ट्रेड-यूनियन बनाने में सफल रहे। वे दक्षिणी हुनान में आनयुआन के कोयला-खदानों में गये जहां मजदूरों के जुझारू हड़तालों का एक लम्बा इतिहास रहा था। वहां प्रतिदिन आठ सेण्ट की मजदूरी पर खदान-मजदूर 14-15 घण्टे तक काम करते थे। माओ ने खदान मजदूरों के लिए क्रान्तिकारी स्कूल की स्थापना की और अगले कई वर्षों आनयुआन खदानें पार्टी कतारों में भरती का एक प्रमुख केन्द्र बनी रहीं। खदानों के भीतर उतर-उतरकर माओ खदान मजदूरों से उनकी जिन्दगी के हालात और क्रान्ति की जरूरत के बारे में बात करते थे। वे रेंग-रेंगकर उन संकरी सुरंगों में जाते थे जहां कम उम्र के बच्चे कोयले की गाड़ियां खींचकर ले जाते थे। वे मजदूरों के घरों में जाते थे और उनकी जिन्दगी के बारे में उनकी बातें नोट करते थे। वे कहते थे, "इतिहास तुम्हारे हाथ में है। इतिहास बनाना तुम्हारा काम है।"

माओ ने पूरे हुनान प्रान्त का दौरा करके मुख्य उद्योगों में यूनियनें और पार्टी-सेल संगठित किये। नवम्बर, 1922 में बीस यूनियनों को एकजुट करके श्रमिक संघों का एक एसोसियेशन बनाया गया और माओ अखिल चीन श्रमिक महासंघ की नवगठित हुनान शाखा के अध्यक्ष चुने गये। मजदूरों ने मिलिशिया, सुरक्षा, सार्वजनिक कल्याण, शिक्षा और सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए क्रान्तिकारी कमेटियां गठित कीं। "सत्ता मजदूर वर्ग को दो" ख्रयह एक लोकप्रिय नारा बन गया। 1924 में पार्टी के महज 500 सदस्य थे। 1927 में पार्टी-सदस्यों की संख्या 58,000 हो गई। 1925 में अखिल चीन श्रमिक महासंघ के 5 लाख 40 हजार सदस्य थे। 1927 तक यह संख्या 20 लाख 80 हजार तक जा पहुंची।

(अगले अंक में जारी)

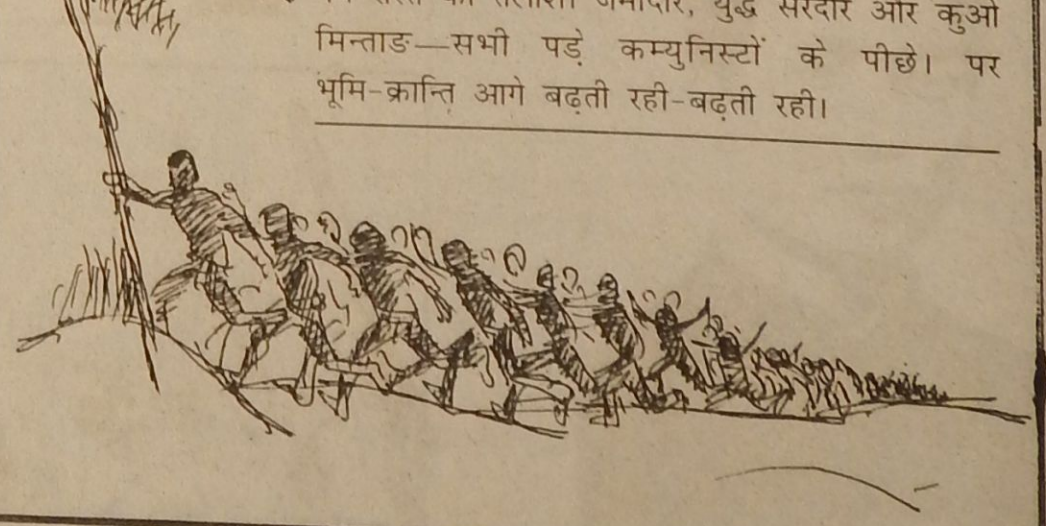

अगले अंक में पढ़िए

माओ ने किसान मोर्चा सम्भाला। चीनी क्रान्ति के नये रास्ते की तलाश। जमींदार, युद्ध सरदार और कुओ मिन्ताङ—सभी पड़े कम्युनिस्टों के पीछे। पर भूमि-क्रान्ति आगे बढ़ती रही-बढ़ती रही।

नया वर्ष संघर्षों का, नई सदी मेहनतकश की

(पेज 1 से आगे)

वास्तव में कुछ पैदा नहीं होता और इससे भी ज्यादा वह शेयर बाजार की सट्टेबाजी में लगती है, जहां पूंजी की तरक्की एक गुब्बारे के फूलने जैसा होता है, जो बीच-बीच में फूट पड़ता है। यह आज के पूंजीवाद की परजीवी और आत्मघाती जुआड़ी प्रवृत्ति है, जो एक नया लक्षण है। यह बात पूंजीवादी अर्थशास्त्री भी स्वीकार कर रहे हैं कि भूमण्डलीकरण के नुस्खे तमाम सुधारों-संशोधनों के बावजूद, अतिउत्पादन और अतिसंचय के बुनियादी पूंजीवादी संकट को हल नहीं कर सकते, बस, कुछ समय के लिए कुछ राहत ही दे सकते हैं।

जब विश्व सर्वहारा क्रान्तियों के उभार का दौर था, तो समाजवादी राज्यों की सफलता और क्रान्तियों के भय ने दुनिया के पूंजीपतियों को कल्याणकारी राज्य का फार्मूला अपनाने के लिए और मेहनतकश जनता को बहुतेरे अधिकार देने के लिए मजबूर कर दिया था। तीसरी दुनिया के देशों के बुर्जुआ वर्ग ने भी द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, सत्ता में आने के बाद भांति-भांति की ''समाजवादी'' टोपियां पहनकर कल्याणकारी राज्य के इसी फार्मूले का इस्तेमाल किया और अपना उल्लू सीधा किया। अब सर्वहारा क्रान्तियों के पहले चक्र की पराजय के बाद मजदूर वर्ग की तमाम उपलब्धियों को छीनने के साथ ही कल्याणकारी राज्यों के ढांचे को भी पूरी दुनिया में तोड़ा जा रहा है। **''सबकुछ बाजार में बिकेगा, कूवत हो खरीदो, अन्यथा भूखों मरो'', ''बाजार में अपनी श्रमशक्ति हमारे द्वारा तय कीमतों व शर्तों पर बेंचो और हमारा माल भी हमारे द्वारा ही तय कीमतों पर खरीदो''**—ये ही मुक्त बाजार के सूत्रवाक्य हैं।

मुक्त बाजार की मुहिम ने पूंजीवाद के तमाम जनकल्याणकारी ''संतई'' के चोलों-चोंगों को उतारकर उसे अपने असली रूप में सामने ला दिया है—एकदम उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध जैसे ही बर्बर रूप में। मजदूरों के बीच सुधारवाद की राजनीति करने वालों का सामाजिक आधार सिकुड़ता जा रहा है और उनके 'ड्रीमलैण्ड'—कल्याणकारी राज्य के यूरोपीय मॉडल (और नकली कम्युनिज्म का सोवियत मॉडल भी) मुख्यतः टूट चुके हैं और बचे-खुचे भी जल्दी ही ध्वस्त हो जायेंगे।

भारत और भारत जैसे तमाम गरीब देशों की भी आज यही स्थिति है कि कुल सर्वहारा आबादी के महज पांच फीसदी हिस्से को बड़े उद्योगों में स्थायी नौकरी की सुविधाएं हासिल हैं और उनके भी लगभग आधे हिस्से को ही सापेक्षतः कुलीन या सफेद कॉलर वाला मजदूर कहा जा सकता है। वे ट्रेड यूनियनें और मजदूरों के वे नेता, जिन्होंने दलिया के कटोरे और एक टिक्की मक्खन के लिए मजदूर वर्ग के राजनीतिक संघर्षों और ऐतिहासिक मिशन का सौदा कर लिया; उनका जनाधार इन्हीं कुलीन मजदूरों के बीच है और वह भी आज छीजता-सिकुड़ता जा रहा है। दिहाड़ी और ठेके पर काम करने वाली भारी सर्वहारा आबादी उत्पादन की प्रकृति के हिसाब से संगठित सर्वहारा आबादी है, लेकिन सेवा-शर्तों के हिसाब से और राजनीतिक-आर्थिक मांगों पर संगठन बनाकर लड़ने की दृष्टि से असंगठित है। यही स्थिति कृषि-सर्वहारा की है। सर्वहारा वर्ग के इन हिस्सों में अर्थवादी-सुधारवादी मजदूर राजनीति का सामाजिक आधार नहीं है, महज कुछ दलाल छुटभैये सक्रिय हैं। यह भी आज कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है कि सफेदपोश मजदूरों का एक हिस्सा आज संशोधनवादियों से पीछा छुड़ाकर फासिस्टों की मजदूर राजनीति का झण्डा थाम्ह रहा है और क्रान्तिकारी मजदूर राजनीति के प्रचार और आन्दोलनात्मक कामों की कमी के कारण आम मजदूरों का एक हिस्सा भी उस ओर आकृष्ट हो रहा है।

यह तो हुआ समस्या और चुनौतियों का पहलू, सकारात्मक पहलू यह है कि जो मजदूर राजनीति अपने को इसी पूंजीवादी व्यवस्था में बेहतर स्थिति की मांग करने तक सीमित रखती थी, उसकी कलई खुलने और सीमाएं पता चलने के बाद व्यापक मजदूर आबादी के भीतर क्रान्तिकारी मजदूर राजनीति को ले जाने की अनुकूल स्थितियां नये सिरे से पैदा हुई हैं और मजदूर की जिन्दगी भी आज खुले तौर पर, उसे यह समझने के लिए मजबूर कर रही है कि उसके पास साफ नजर आती हैं।

पहली बात, गुजरी सदी से भी पहले, उन्नीसवीं सदी के मध्य से ही (जब से विश्व-ऐतिहासिक स्तर पर पूंजीवादी जनवादी क्रान्तियों की विजय मुकम्मिल मानी जा सकती है) विश्व-इतिहास की धुरी सर्वहारा संघर्ष ही रहे हैं। विश्व स्तर पर, समाजवाद की वर्तमान हार के बाद भी इस स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ा है।

दूसरी बात, गुजरी हुई सदी साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्ति की सदी रही। साम्राज्यवाद ने इस दौर में मानवता के ऊपर दो-दो विश्वयुद्धों का कहर बरपा किया, फासीवाद के भस्मासुर को पैदा किया और पूरी दुनिया के एक या दूसरे कोने में, हर रोज क्षेत्रीय युद्धों और गृहयुद्धों में रक्तपात और तबाही का सिलसिला जारी रहा। विज्ञान और तकनोलॉजी के अकूत विकास के बावजूद और दुनिया की पूरी आबादी की जरूरत की हर चीज साल के एक चौथाई से भी कम कार्यदिवसों में पैदा कर लेने की क्षमता के बावजूद, मुनाफे के लिए (न कि जरूरत के लिए) पैदा करने वाली व्यवस्था ने इस क्षमता के प्रयोग को रोके रक्खा है। यही नहीं, बाजार में

फिर लोहे के गीत हमें गाने होंगे

फिर लोहे के गीत हमें गाने होंगे
दुर्गम यात्राओं पर चलने के संकल्प जगाने होंगे।

फिर से पूंजी के दुर्गों पर हमले करने होंगे।
नया विश्व निर्मित करने के सपने रचने होंगे।
श्रम की गरिमा फिर से बहाल करनी होगी।
सुन्दरता के मानक फिर से गढ़ने होंगे।
फिर लोहे के गीत हमें गाने होंगे।

सत्ता के महलों से कविता बाहर लानी होगी।
मानवात्मा के शिल्पी बनकर आवाज उठानी होगी।
मरघटी शान्ति की रुदन भरी प्रार्थना रोकनी होगी।
आशाओं के रणराग हमें रचने होंगे।
फिर लोहे के गीत हमें गाने होंगे।

—शशिप्रकाश

''खोने के लिए सिवा अपनी जंजीरों के और कुछ भी नहीं है।'' क्रान्तिकारी राजनीतिक शक्तियां आगे बढ़कर पहल अपने हाथों में ले सकें और नई शुरुआत कर सकें, इसके अनुकूल स्थितियां फिर से तैयार होने लगी हैं।

●

पिछले हजार वर्षों के भीतर, सामन्तवाद के शताब्दियों लम्बे मध्ययुगीन अंधकार और पूंजीवाद की लगभग दो शताब्दियों के बाद, हम जहां खड़े हैं, वहां अगली सहस्राब्दी की बात करना महज अटकलबाजी ही होगी। पूंजीवाद के युग ने ही इतिहास की रफ्तार को, उत्पादक शक्तियों के विकास की गति को इतना तेज कर दिया है कि हम ज्यादा से ज्यादा शताब्दी तक की बात कर सकते हैं। सहस्राब्दी की बातें उन्हें करने दें, जिन्हें भांति-भांति के लटकों-झटकों से अपने माल बेचने हैं।

जब हम गुजरी हुई सदी पर निगाह डालते हैं तो कुछ बातें एकदम कीमतों को गिरने से रोकने के लिए उत्पादन नष्ट किये जाते रहे हैं और उत्पादक शक्तियों को तबाह किया जाता रहा है। ज्ञान-विज्ञान से अरबों मेहनतकश आबादी लगातार वंचित रही है और उसके परिणामों से भी। धनी और गरीब के बीच की खाई लगातार मौजूद रही है और बेरोजगारी, बीच-बीच की बेहतर स्थितियों के बावजूद एक असाध्य रोग बनी रही है।

इसके साथ ही, गुजरी सदी दो-दो महान सर्वहारा क्रान्तियों (रूस और चीन की) और उनकी अनुगामिनी कई सर्वहारा क्रान्तियों की साक्षी रही है, सर्वहारा और मेहनतकश आबादी की भागीदारी से उपनिवेशवाद-नवउपनिवेशवाद को इतिहास की कचरापेटी के हवाले करने वाले राष्ट्रीय मुक्ति-युद्धों की साक्षी रही है, और साथ ही, वर्ग-संघर्ष के इस दौर की अधूरी परिणतियों की भी साक्षी रही है, साम्राज्यवाद के नये दौर की और नई रणनीति की भी साक्षी रही है और महान सर्वहारा क्रान्तियों के प्रथम संस्करणों की पराजय की भी साक्षी रही है।

तीसरी बात, प्रथम सर्वहारा क्रान्तियों और समाजवादी प्रयोगों ने गुजरी सदी में यह साबित कर दिखाया कि मजदूर राज्य एवं समाजवाद संभव है और व्यावहारिक है। वह स्थायी नहीं हो सका, क्योंकि पूंजीवाद और वर्ग-समाज की शक्तियां अभी भी मजबूत थीं और प्रारम्भिक प्रयोगों में भी कुछ कच्चापन और अधूरापन था, जिन्हें आम तौर पर जानने-समझने की एक दृष्टि भी चीन में हुए सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के प्रयोग ने दे दी है।

चौथी बात, इस सदी की शुरुआत के अनुमानों-आकलनों के मुकाबले साम्राज्यवाद की उम्र और ताकत जरूर अधिक सिद्ध हुई है। इसका एक कारण तो यह था कि इसकी कार्यप्रणाली और रणनीति में बदलाव की कुछ संभावनाओं को उससमय देखा नहीं जा सका था। पर इससे अहम कारण यह था कि वर्ग समाज की हजारों वर्षों की (जड़ता की) शक्ति—समूची बौद्धिक-भौतिक शक्ति आज वर्ग-विहीन समाज की ओर यात्रा को रोकने में लगी है और इस नाते मानव-इतिहास के इस युग के वर्ग-संघर्ष अधिक दुर्द्धर्ष, विकट, दीर्घकालिक और उतार-चढ़ाव भरे होने लाजिमी हैं। साथ ही, साम्राज्यवाद वास्तव में, अपनी ताकत की वजह से उतना ताकतवर नहीं लग रहा है, जितना कि मजदूर क्रान्ति की हिरावल, ताकतों की कमजोरी के कारण प्रतीत हो रहा है। मूल बात यह है कि साम्राज्यवाद की प्रकृति और अभिलाक्षणिकताओं के बारे में, और उससे भी मूल बात यह है कि पूंजीवाद की प्रकृति और कार्यप्रणाली और अनिवार्य अन्तरविरोधों के बारे में ऐतिहासिक भौतिकवाद की बुनियादी प्रस्थापनाएं आज भी सही हैं। इस आधार पर आने वाली सदी की नई सर्वहारा क्रान्तियों का कोई कैलेण्डर तो नहीं तैयार किया जा सकता, लेकिन इतना दावे के साथ कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के अंत तक साम्राज्यवाद का कायम रह पाना संभव नहीं लगता।

कारण?—यह बात आज पहले हमेशा की अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्ट है कि विश्व पूंजीवादी तंत्र के बुनियादी अन्तरविरोध आज भी वही हैं और इनका समाधान इसी दायरे में हो पाना असम्भव है। पुनः नौजवान बनने के पूंजीवाद के सभी स्वप्न दुःस्वप्न साबित हुए हैं। यह स्पष्ट है कि मुनाफे की हवस लगातार समाज की बहुसंख्यक आबादी को बेरोजगारी, असमानता, अनिश्चय की आग में झोंकती रहेगी और फिर भी पूंजी की भूख नहीं मिटेगी। इस स्थिति का समाधान केवल यही हो सकता है कि उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व का भी समाजीकरण हो जाये।

●

पराजय के इस अंधेरे में भी सर्वहारा संघर्ष ही आज भी इतिहास की धुरी बने हुए हैं। इक्कीसवीं सदी की संभावनाओं के बारे में बात करने के लिए हमारे सामने इससे बेहतर कोई विकल्प नहीं है कि हम **माओ** के इन शब्दों को दुहरा दें जो उन्होंने 1962 में कहे थे : **''अब से लेकर अगले पचास से सौ वर्षों तक का युग एक ऐसा महान युग होगा जिसमें दुनिया की सामाजिक व्यवस्था बुनियादी तौर पर बदल जायेगी, वह एक ऐसा भूकम्पकारी युग होगा जिसकी तुलना इतिहास के पिछले किसी भी युग से नहीं की जा सकेगी। एक ऐसे युग में रहते हुए, हमें उन महान संघर्षों में जूझने के लिए तैयार रहना चाहिए जो अपनी विशिष्ट चिन्ताओं में अतीत के तमाम संघर्षों से कई मायने में भिन्न होंगे।''**

यह जो नया वर्ष शुरू हुआ है हम उसे संघर्षों का वर्ष बनाने का आह्वान कर रहे हैं और हमें विश्वास है कि यह नई सदी मेहनतकश की होगी।

नारी सभा

पूंजीवाद के ''स्वर्ग'' में देह-व्यापार का नर्क

पूंजीवादी समाज के अन्तर्गत चाहे नैतिकता की जितनी भी दुहाई दी जाये, ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते...'' का चाहे जितना भी जाप किया जाये, जमीनी हकीकत यह है कि यह मानव-द्रोही व्यवस्था नैतिक पतन की भी पराकाष्ठा है। इसमें औरतों का दर्जा न केवल सबसे सस्ते, सबसे तुच्छ कोटि के उजरती मजदूर तथा भोग के समान व नुमाइश की चीज का है, बल्कि दुनिया के प्राचीनतम पेशा—वेश्यावृत्ति को भी इसने नई ऊंचाइयों तक पहुंचा दिया है। पेट की आग बुझाने के लिए अस्मत बेचने का काम न केवल बदस्तूर जारी है बल्कि पूंजीवादी सौदागरों ने इसे संगठित व्यवसाय का रूप दे दिया है।

भारत में देह-व्यापार में सालाना 40,000 करोड़ (यानी 4 खरब) रुपयों का लेन-देन होता है और इसमें कुल 9 लाख औरतें लगी हुई हैं। इस धंधे में धकेल दी गई बच्चियों की तादाद 20 लाख 70 हजार से 4 लाख के बीच है। जिस्म बेचकर ये औरतें औसतन सालाना लगभग 11,000 रुपये यानी लगभग 30 रुपये रोजाना कमाती हैं। ये तथ्य दिल्ली स्थित 'सेण्टर ऑफ कंसर्न फॉर चाइल्ड लेबर' की एक रिपोर्ट में दिये गये हैं, जो पिछले दिनों राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष ने जारी की।

सुधारवादियों की चीख-पुकार और सभा-गोष्ठियों में कुछ दिनों तक यह एक ताजा मुद्दा बना रहेगा और दुनिया बदस्तूर अपनी गति से चलती रहेगी। सच यह है कि मुनाफे और लोभ-लालच पर टिकी व्यवस्था—पूंजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंके बिना इस सामाजिक कोढ़ का खात्मा कदापि नहीं किया जा सकता। सबको काम करने का अधिकार और स्त्रियों को समानता का दर्जा देने वाली सामाजिक व्यवस्था ही वेश्यावृत्ति को समाप्त कर सकती है। वर्गीय शोषण-उत्पीड़न और स्त्रियों की गुलामी के साथ शुरू हुआ यह अमानवीय पेशा वर्ग-समाज की बुनियाद पर चोटों के साथ ही समाप्त हो सकेगा।

['बिगुल' के पाठकों को हमारा सुझाव है कि वे इस प्रश्न की वैज्ञानिक समझदारी के लिए **डाइसन कार्टर** की पुस्तक **'पाप और विज्ञान'** अवश्य पढ़ें। —सम्पादक]

कहानी

एक पतझड़

• मक्सिम गोर्की

एक बार पतझड़ के मौसम में मैंने अपने को बड़ी ही बेढब और कष्टकारी परिस्थिति में फंसा हुआ पाया : उस शहर में मैं अभी पहुंचा ही था और वहां किसी को नहीं जानता था। मेरी जेब में एक कोपेक भी नहीं था और न ही सिर छुपाने को कोई जगह थी।

शुरू के कुछ दिनों में मैंने अपने वे कपड़े बेच डाले जिनके बिना काम चलाया जा सकता था। फिर मैं वह शहर छोड़कर उस्तिए नामक जगह चला गया जहां जहाजी घाट थे और, सीजन में, जब पानी नावों-स्टीमरों के आने-जाने लायक होता था तो वहां की रोजमर्रे की जिन्दगी हलचलपूर्ण व्यस्तता से भरपूर होती थी, लेकिन अब वहां सन्नाटा और वीरानी का आलम था। अक्टूबर का महीना बीत रहा था।

नम बालू को पैरों की ठोकर से छितराते हुए और कुछ खाने लायक सामान पा लेने की उम्मीद में खोजी निगाहों से लगातार उसे निरखते-परखते हुए मैं अकेले निर्जन मकानों और ट्रेडिंग-बूथों के बीच भटक रहा था और इस बारे में सोच रहा था कि पेट भरा होना कितनी शानदार चीज होती है...

सांस्कृतिक विकास की इस मंजिल पर शारीरिक भूख बुझाने के मुकाबले आध्यात्मिक भूख बुझाना अधिक आसान है। आप घरों से घिरी हुई सड़कों पर भटकते रहते हैं। घर, जो बाहर से संतोषजनक सीमा तक सुंदर होते हैं और भीतर से—हालांकि यह लगभग एक अनुमान ही है—संतोषजनक से आरामदेह तक होते हैं; ये आपके भीतर वास्तुकला, स्वास्थ्य विज्ञान और बहुतेरे दूसरे उदात्त और बुद्धिमत्तापूर्ण विषयों पर सुखद विचार पैदा कर सकते हैं; सड़कों पर आप गर्म और आरामदेह कपड़े पहने लोगों से मिलते हैं—वे विनम्र होते हैं, अक्सर किनारे हटकर आपके लिए रास्ता छोड़ देते हैं और आपके वजूद के अफसोसनाक तथ्य पर ध्यान देने से कुशलतापूर्वक इंकार कर देते हैं। निश्चय ही, एक भूखे आदमी की आत्मा एक भरे पेट वाले की आत्मा की अपेक्षा बेहतर ढंग से और अधिक स्वास्थ्यप्रद ढंग से पोषित होती है—यह एक ऐसा विरोधाभास है जिससे, निस्संदेह, भरे पेट वालों के पक्ष में कुछ निहायत चालाकी भरे नतीजे निकाल लेना मुमकिन है!...

... शाम ढल रही थी। बारिश हो रही थी और उत्तर से आती हवा मनमौजी अंदाज में बह रही थी। वह खाली बूथों और स्टाल के बीच से सीटी बजाती हुई गुजरती थी, होटलों की बंद खिड़कियों से टकराती थी और नदी की लहरों पर कोड़ों से चोट करती हुई झाग के ऊंचे सफेद तरंग-श्रृंगों का निर्माण करती थी। लहरें एक के बाद एक तेजी से भागती हुई अंधेरे विस्तार में समा जाती थीं... ऐसा लगता था मानो नदी जाड़े के आगमन को महसूस कर रही थी और बर्फ के बंधनों से आतंकित भागती जा रही थी, जो उत्तरी हवा की मदद से उसी रात भी पड़ सकती थी। आसमान भारी और अंधेरा था और उससे लगातार बारिश की इतनी बारीक बूंदे गिर रहीं थी कि आंखों से मुश्किल से ही देखा जा सकता था। दो टूटे हुए और विकराल भिंसा के पेड़ और उनकी जड़ों के पास एक उल्टी पड़ी नाव—इनसे मेरे आसपास की उदासी और कारुणिकता और अधिक बढ़ जा रही थी।

टूटे पेंदे वाली उल्टी पड़ी नाव और ठण्डी हवा द्वारा नंगे कर दिये पेड़, बूढ़े और विषादमय... मेरे इर्द-गिर्द की हर चीज टूटी हुई थी, बंजर थी और मृत थी और आकाश लगातार रोता जा रहा था, आंसू बहाता जा रहा था। मेरे आसपास एक निर्जन अंधेरा फैला था—लग रहा था जैसे सबकुछ मर रहा हो लग रहा था जैसे जल्दी ही सिर्फ मैं अकेला जीवित बचा रह जाऊंगा और ठण्डी मृत्यु मेरी भी प्रतीक्षा कर रही थी।

और उस समय मैं सत्रह साल का था—एक शानदार उम्र।

ठण्डी, नम रेत पर मैं चलता रहा, चलता रहा मेरे दांत कट-कट करते हुए भूख और ठण्ड के सम्मान में किटकिट बज रहे थे और, अचानक, खाने लायक किसी चीज की बेसूद तलाश करते हुए जब मैं एक बूथ के पीछे घूम रहा था—मैंने औरत की पोशाक पहने एक आकृति को जमीन पर एकदम दोहरी लेटी हुई कुछ करते देखा। वह बारिश से एकदम सराबोर थी और कंधे मोड़े झुकी हुई थी। उसके पीछे ठहरकर, मैंने यह देखने के लिए नीचे देखा कि वह कर क्या रही है। ऐसा जान पड़ा कि बूथ के नीचे से सुरंग बनाने के लिए वह अपने हाथों से ही बालू में एक गड्ढा खोद रही है।

''यह तुम किसलिए कर रही हो?'' मैंने उसकी बगल में एड़ियों के बल नीचे उकड़ूं बैठते हुए पूछा।

उसने एक घुटी हुई चीख निकाली और तेजी से उछलकर अपने पैरों पर खड़ी हो गयी। अब, जब वह खड़ी हो गई थी और भयभीत, फटी आंखों से मुझे घूर रही थी तो मैंने देखा वह मेरी ही उम्र की, बहुत प्यारी सी दीखने वाली छोटे से चेहरे वाली एक लड़की है। उसके चेहरे पर, दुर्भाग्य से, चोट के तीन बड़े निशान थे। यह उसके चेहरे की सुन्दरता के प्रभाव को कम कर रही थी। हालांकि चोट के ये निशान सन्तुलन के गहरे बोध के साथ सुनिश्चित दूरियों पर अंकित थे—एक-एक दोनों आंखों के नीचे, दोनों समान आकार के, और तीसरा, कुछ बड़ा ललाट पर, नकबांसा के ठीक ऊपर। इस सन्तुलन में, किसी आदमी की सुन्दरता चौपट करने के काम में, एक कलाकार के कला कर्म की वास्तविक परिष्कृति देखी जा सकती थी।

लड़की मेरी ओर देखती रही और उसकी आंखों से भय का भाव धीरे-धीरे गायब हो गया... फटाफट उसने हाथ से रेत झाड़ी, सिर पर बंधे सूती स्कार्फ को ठीक किया और हवा से बचने के लिए सिकुड़ते हुए बोली :

''तुम भी भूखे हो, है न? तो अब तुम खोदो थोड़ी देर। मेरे हाथ थक गये हैं। इसके भीतर रोटी है,'' उसने बूथ की ओर इशारा किया, ''यह स्टॉल अभी तक खुलता रहा है...''

मैंने खोदना शुरू किया। वह थोड़ी देर इंतजार करती रही और कुछ समय तक मुझे देखने के बाद, बगल में उकड़ूं बैठकर मेरी मदद करने लगी।

हम चुपचाप काम करते रहे। मैं बता नहीं सकता कि मैं उससमय अपराध-संहिता, नैतिकता, सम्पत्ति और ऐसी उन तमाम चीजों के बारे में सोच रहा था या नहीं जिन्हें, जो जानते हैं उनका कहना है, कि हमें अपनी जिन्दगी में हर क्षण को अपने दिमाग में रखना चाहिए। भरसक मैं सच्चाई को यथावत बयान करना चाहता हूं, और इसलिए मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि, जहां तक मुझे याद है, मैं बूथ की दीवार के नीचे से सुरंग बनाने के काम में इतना तल्लीन हो गया था कि उस चीज के अलावा सबकुछ पूरी तरह भूल चुका था, जिसकी हमें बूथ के भीतर मिलने की उम्मीद थी....

शाम गहराती जा रही थी। हमारे इर्द-गिर्द नम, ठण्डा, निर्मम अंधेरा गाढ़ा होता जा रहा था। लहरों का शोर अब पहले से कम प्रचण्ड था लेकिन बूथ की टिन की छत पर बारिश की बूंदे ज्यादा से ज्यादा कोलाहल करती हुई बजने लगी थीं। दूर कहीं से चौकीदार की सीटी की आवाज आ रही थी।

''वहां कोई फर्श है या नहीं?'' मेरी सहायक ने धीरे से पूछा। मैं समझ नहीं पाया कि वह किस चीज के बारे में पूछ रही है और कुछ नहीं बोला।

''मेरा मतलब है, बूथ के भीतर फर्श तो नहीं बना है? अगर है तो हमारी सारी मेहनत बेकार जायेगी। पूरी सुरंग खोदन के बाद हमें मोटे पटरे मिलेंगे... उन्हें कैसे तोड़ोगे? बेहतर होगा कि ताला तोड़ दिया जाये... ताला कोई मजबूत नहीं है....''

शानदार विचार औरतों के दिमाग में कम ही आते हैं। फिर भी ऐसा कि आप देख रहे हैं, ऐसा हुआ। अच्छे विचारों की मैं हमेशा कद्र करता रहा हूं और यथासार्मथ्य उनपर अमल करने की अधिकतम सम्भव कोशिशें करता रहा हूं।

ताले को खोजने के बाद मैंने उसे जोर से झटका दिया और वह कड़ियों सहित हाथ में आ गया। मेरी सहयोगी झुकी और शहर के नीचे की आयताकार जगह से सांप की तरह रेंगकर बूथ के अंदर घुस गई।

''बहुत अच्छे!'' वह शाबासी देते हुए चिल्लाई।

किसी औरत के मुंह से प्रशंसा का एक शब्द सुनना मुझे किसी पुरुष द्वारा प्रस्तुत पूरी सम्बोधि गीति से भी अधिक प्रीतिकर लगता है, चाहे भले ही वह पुरुष अपनी वक्तृता-कला में, प्राचीन काल के सभी वक्ताओं को मिला दिया जाये, और उनसे भी अधिक पटु क्यों न हो! लेकिन उस क्षण इस उपहार पर मैंने बहुत ज्यादा ध्यान नहीं दिया, और उससे संक्षेप में और डरते हुए पूछा :

''कुछ है?''

एकरस आवाज में भीतर से उसने अपनी खोजों को गिनाना शुरू कर दिया:

''एक टोकरी पुराने बोतल... थैले खाली... एक छाता.... एक लोहे की बाल्टी।''

कुछ भी खाने लायक नहीं। मेरी उम्मीदें डूबने लगीं, लेकिन तभी, अचानक वह जोशीली आवाज में चिल्लाई : ''अहा! मिल गया...''

''क्या?''

''रोटी... पावरोटी का पूरा पैकेट, सफेद पावरोटी का... भीगा...

हालांकि... पकड़ो!''

पावरोटियों का पैकेट मेरे पैरों के पास लुढ़का आया और ठीक पीछे से अपराध में मेरी सहयोगी बाहर निकली, विजयी मुद्रा में। तबतक पावरोटी का एक टुकड़ा मैं तोड़कर मुंह में डाल भी चुका था और चबाने लगा।

''ये बात हुई! मुझे भी दो थोड़ा... अब हमें यहां से हट जाना चाहिए। कहां चला जाये?'' अंधेरे को भेदने के लिए अपनी आंखों पर जोर देते हुए उसने अपने चारों ओर देखा भीगा हुआ, आवाजों से भरा हुआ अंधकार चतुर्दिक व्याप्त था। ''...वहां, वो उल्टी नाव पड़ी है... उसके बारे में क्या ख्याल है।''

''चलो, चलें!'' और हम चल पड़े। बीच-बीच में अपनी लूट के माल में से तोड़-तोड़कर हम मुंह में ठूंसते रहे और चलते रहे... बारिश तेज थी, नदी दहाड़ रही थी और दूर कहीं से एक लम्बी, उपहासपूर्ण सीटी की आवाज आ रही थी जैसे कोई दीर्घकाय प्राणी, जो भय का अर्थ जानता हो, हर चीज का, हर व्यक्ति का, यहां तक कि शरद की उस वीभत्स रात्रि का और हमारा—इस रात के दो नायकों का मजाक उड़ा रहा हो. ... उस सीटी की हर आवाज पर कोई चीज मेरे दिल को जैसे जकड़-सी लेती थी, लेकिन मैं लोलुपता के साथ खाता जा रहा था और वह लड़की थी, जो मेरे बांये, साथ-साथ चल रही थी।

''तुम्हारा नाम क्या है?'' किसी चीज ने मुझे पूछने के लिए प्रेरित किया।

''नताशा!'' खूब तेज-तेज चपर-चपर करते हुए उसने उत्तर दिया।

मैंने उसे देखा और मेरा दिल मानो दर्द से सिकुड़ने लगा। मैंने सामने अंधेरे में देखा और मुझे लगा कि मेरी नियति की कुरूप, विडम्बनापूर्ण रीति मेरे ऊपर मुस्कुरा रही है एक रहस्यमय ठण्डी मुस्कुराहट..

... लकड़ी की नाव पर बारिश लगातार बज रही थी, उसकी दबी-घुटी सी आवाज उदास विचारों को उकसा रही थी, हवा नाव की टूटी तली की चौड़ी दरार से, जिसमें पटरे का एक ढीला टुकड़ा फड़फड़ा रहा था, होकर सीटी बजाती हुई गुजरती थी और पटरे का टुकड़ा मानो आशंकित होकर शिकायताना अंदाज में चरचरा रहा था। नदी की लहरें तट पर थपेड़े मार रही थीं और एकरस, निराशा भरी आवाज पैदा कर रही थीं। ऐसा लग रहा था जैसे वे अवर्णनीय हद तक उबाऊ और अप्रिय किसी चीज के बारे में कुछ कह रही हों, किसी ऐसी चीज के बारे में जिससे वे विरक्ति की हद तक ऊब चुकी हों, किसी ऐसी चीज के बारे में जिससे वे दूर भाग जाना चाहती हों, लेकिन फिर भी उसके बारे में कुछ कहना अपरिहार्य हो। बारिश की आवाज लहरों के उन थपेड़ों की आवाज के साथ मिल गयी थी और उलटी हुई नाव के ऊपर धरती के सीने में लम्बे समय तक दबी रहने के बाद बाहर निकले दीर्घ निःश्वास की आवाज तैर रही थी। ऐसा लग रहा था मानो चमकदार, उष्ण ग्रीष्म से ठण्डे, सीलन भरे, कुहासाच्छन्न पतझड़ में परिवर्तन की चिरंतन रीति से वह ऊबी और खीझी हुई हो। निर्जन तट पर हवा अंधाधुंध झकोरे मार रही थी और उफनाती नदी, लगातार, लगातार, उदासी गीत गाये जा रही थी।

नाव के नीचे हमारा आवास आरामदेह नहीं था : यह तंग और सीलन भरा था और तले की छेद से बारिश की बूंदे टपक रहीं थीं और हवा के तेज झोंके हमारे ऊपर लगातार आक्रमण कर रहे थे... हम चुपचाप बैठे थे और ठण्ड से कांप रहे थे। मुझे याद है, मैं सोना चाहता था। नताशा नाव के बाजू से पीठ टिकाये एक छोटी सी गेंद की तरह गुड़ी-मुड़ी होकर बैठी थी। अपने घुटनों को ठुड्डी से सटाये, व टकटकी बांधे नदी की ओर देख रही थी, उसकी आंखें पूरी-पूरी खुली हुई थीं—सफेद धब्बे जैसे उसके चेहरे पर वे अपने ठीक नीचे की चोटों के कारण काफी बड़ी लग रही थीं। वह एकदम नहीं हिल रही थी। जड़ता और खामोशी—मैंने महसूस किया—मेरे भीतर अपने साथी के बारे में एकतरह की आशंका पैदा कर रही थी... मैं उससे बातचीत करना चाह रहा था लेकिन समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे शुरू करूं।

पहले वही बोली।

''कितनी बेहूदी जिन्दगी है।'' उसने स्पष्ट, दो टूक शब्दों, गहरे विश्वास के साथ, घोषणा की।

लेकिन यह शिकायत नहीं थी। इन शब्दों में जो असम्पृक्तता थी, वह शिकायत में नहीं होती। ऐसा महसूस होता था कि उसने चीजों के बारे में अपने ही ढंग से सोचा था। चीजों के बारे में उसने सोचा था और एक सुनिश्चित नतीजे पर पहुंची थी जिसको उसने मुखर अभिव्यक्ति दी और यदि मैं इसे गलत ठहराता तो यह खुद से झूठ बोलना होता। इसलिए मैंने कुछ नहीं कहा। और वह, जैसे कि मेरी उपस्थिति से अनजान हो, एकदम निश्चल बैठी रही।

''लेट जाओ और मर जाओ, मैं सोचती हूं, यह एक रास्ता हो सकता है. ..'' नताशा फिर बोली, इस बार नरमी से और सोचने के अंदाज में। और इस बार फिर उसके शब्दों में शिकायत की गंध नहीं थी... स्पष्ट था कि आम तौर पर जिन्दगी के बारे में समुचित विचार प्रकट करने के बाद, उसने अपनी खुद की जिन्दगी का सर्वेक्षण किया था और ठण्डे ढंग से इस नतीजे पर पहुंची थी कि जिन्दगी के अत्याचारों से अपने को बचाने के लिए सिवाय इसके और वह कोई भी कदम उठाने की स्थिति में नहीं थी कि, जैसा कि उसने अभी खुद कहा था, ''लेट जाओ और मर जाओ।''

मैंने इस विचार की इस कदर सुस्पष्टता पर अपने भीतर से जुगुप्सा की असह्य लहर-सी उठते हुए महसूस की और मुझे लगा कि यदि मैं जल्दी से कुछ बोलूंगा नहीं तो निश्चित ही रुलाई फूट पड़ेगी... और एक औरत के सामने मैं ऐसा नहीं चाहता था, खासतौर पर तब जबकि वह खुद नहीं रो रही थी। मैंने उससे बातचीत करने की कोशिश करने का फैसला किया।

''तुम्हें पीटा किसने?''

''जाहिर है, पाश्का ने, हमेशा की तरह...'' उसने शान्ति के साथ ऊंची आवाज में कहा।

''वह कौन है?

''मेरा बॉय-फ्रेण्ड... एक नानबाई.''

''क्या वह तुम्हें अक्सर पीटता है?''

''जब भी ज्यादा पी लेता है...''

फिर, अचानक वह सरककर मेरे पास बैठ गई और मुझे अपने बारे में, पाश्का के बारे में तथा अपने और उसके

(पेज 11 पर जारी)

एक पतझड़

(पेज 10 से आगे)

बीच के रिश्तों के बारे में बताने लगी। वह ''एक वैसी लड़की थी, ''आप समझ रहे हैं, कैसी...'' और वह हल्के लाल रंग के मूंछों वाला एक नानबाई था जो एकॉर्डियन बहुत अच्छा बजाता था। वह ''मैडम के वहां'' उसके पास आया करता था और वह उसे बहुत पसन्द करती थी क्योंकि उसका साथ अच्छा लगता था और उसके कपड़े साफ होते थे। उसका कोट कम से कम पन्द्रह रूबल का था और वह हल्की सलवटों वाले चमड़े के बूट पहने था। इन सब कारणों से वह उसके प्रेम में पड़ गई और उसका वह ''खास दोस्त'' बन गया। जैसे ही वह उसका ''खास दोस्त'' बन गया, उसने उससे वे पैसे लेने शुरू कर दिये जो दूसरे ग्राहक उसे मिठाई खाने के लिए देते थे और उन पैसों से वह पीने लगा और उसे पीटने लगा—और यह भी उतना बुरा नहीं होता, यदि वह उसकी ही आंखों के सामने दूसरी लड़कियों के साथ नहीं जाने लगता तो....

''और यह बात भला मेरे दिल को क्यों नहीं लगती? ऐसा वह इसलिए नहीं कर रहा था कि मैं दूसरी लड़कियों से बुरी थी.. ऐसा वह सिर्फ मुझे जलाने के लिए करता था, सुअर! परसों मैंने मैडम से टहलने के लिए छुट्टी ली और उसके घर पहुंची और वहां दून्का को बैठे हुए पाया। वह नशे में थी और वह भी काफी घुत था। मैंने उससे कहा: ''तुम सूअर हो, असली सूअर! तुम धोखेबाज हो!' और उसने मुझे पीट-पीट कर बेहाल कर दिया। उसने लातों से पीटा, मेरे बाल खींचे—बहुत कुछ किया... लेकिन यह भी उतना बुरा नहीं होता, यदि वह सबकुछ फाड़ नहीं डालता तो... और अब मैं क्या करूंगी? मैं मैडम को मुंह कैसे दिखाऊंगी? सबकुछ फाड़ दिया: मेरे कपड़े और जैकेट—एकदम नई थी'' और उसने मेरे सिर से स्कार्फ नोच लिया... हे भगवान! अब मैं क्या करूंगी?'' अचानक उसकी आवाज टूट गई और एक विषण्ण विलाप फूट पड़ा।

और हवा भी विलाप करती रही, ज्यादा से ज्यादा तेज और ठण्डी होती हुई.. मेरे कटकटाते दांत फिर नृत्य करने लगे। वह भी ठण्ड से एकदम सिकुड़ गई थी और मेरे इतने नजदीक सरक आई थी कि मैं अंधेरे में चमकती उसकी आंखें देख सकता था।

''तुम सभी बहुत बुरे होते हो, तुम मर्द लोग मैं तुम सबको पैरों तले रौंद-कुचल देना चाहती हूं, एकदम! मैं तुमलोगों को बोटी-बोटी काट देना चाहती हूं। तुममें से अगर कोई पड़ा मरता रहे... तो मैं उसके घिनौने चेहरे पर थूक दूंगी, थूक दूंगी और इसके लिए मुझे कभी अफसोस नहीं होगा। निकम्मे जानवर! तुम लोग रिरियाते हो और रिरियाते हो और गन्दे कुत्तों की तरह अपनी पूंछें हिलाते हो, लेकिन जब तुम्हें तुम्हारे ऊपर रहम करने वाली कोई मूर्ख औरत मिल जाती है, तो बस, सब कुद खतम। इसके पहले कि वह कुछ समझे, तुम उसे पैरों से रौंद डालते हो, कुचल डालते हो....'' गन्दे भंड़वे।''

उसकी गालियां अत्यधिक विविधतापूर्ण थीं, पर शब्दों में ताकत नहीं थी : ''गंदे भंड़वों'' के प्रति जो गुस्सा या असली नफरत होनी चाहिए, वह मैं उनमें नहीं देख पा रहा था। वह जो वास्तव में कह रही थी, उसके अनुपात में सामान्यत: उसके बोलने का लहजा बहुत शान्त था और उसकी आवाज में उदासी भरी एकरसता थी।

फिर भी उसकी इन बातों ने मुझे उन सर्वाधिक अर्थगर्भित और सर्वाधिक विश्वसनीय दुखपूर्ण पुस्तकों से और भाषणों से भी अधिक प्रभावित किया, जो मैंने उसके पहले, और उसके बाद भी, पढ़े और सुने थे और आज के दिन तक जो पढ़ और सुन रहा हूं। और, आप जानते हैं, कि ऐसा इसलिए है कि मरने की यंत्रणा हमेशा ही, मृत्यु के सर्वाधिक सटीक और कलात्मक वर्णन से भी अधिक स्वाभाविक और प्रभावशाली होती है।

मैं बहुत बुरा महसूस कर रहा था, शायद अपने सह-निवासी की बातों से उतना नहीं, जितना कि ठण्ड की वजह से। मैं धीरे से कराहा और मेरे दांत बज उठे।

तब, लगभग एन उसी समय, मैंने दो ठण्डे नन्हें [illegible] छूता हुआ और दूसरा मेरे चेहरे पर आकर रुका हुआ और इसके साथ ही एक चिन्तापूर्ण, महीन और नरमी भरी आवाज में यह सवाल :

''क्या बात है? तुम्हें हुआ क्या है?''

मैं यह सोचना चाहता था कि मुझे कोई और ही सम्बोधित कर रहा है, नताशा नहीं, जो अभी-अभी ऐलान कर रही थी कि सभी मर्द सूअर होते हैं और उन सबके सत्यानाश की कामना कर रही थी। लेकिन वह पहले ही जल्दी-जल्दी और हड़बड़ाई सी बोलने लगी थी...

''क्या बात है? ऐं? ठण्ड लग रही है? कुड़कुड़ा गये तुम तो! तुम भी एक ही चीज हो, नहीं? वहां बैठे हो और कुछ नहीं बोल रहे हो... उल्लू की तरह! तुम ठण्डा गये हो, यह तुम्हें पहले ही बताना चाहिए था न! ... वहां... जमीन पर लेट जाओ, हाथ-पैर फैलाकर.. और मैं लेटती हूं ऊपर... हां, अब ठीक है! अब मुझे पकड़ लो... और कसकर.. अब ठीक है, अब तुम जल्दी ही गर्मी महसूस करने लगोगे... और उसके बाद हम दोनों चित्त लेट जायेंगे... किसी तरह से रात काटनी है... क्या गड़बड़ हो गया है तुम्हारे साथ, क्या पीने को नहीं मिली? क्या तुम्हारी नौकरी छूट गई है?... कोई बात नहीं!''

वह मुझे दिलासा देने की कोशिश कर रही थी... मेरे भीतर एक नया दिल डालने की कोशिश कर रही थी...

क्या मुझ पर लानत भेजी जानी चाहिए? यह सब कुछ कितना विडम्बनापूर्ण था! जरा सोचिए, कहां तो ऐसी तरह-तरह की भंयकर विद्वतापूर्ण पुस्तकें पढ़कर जिनकी प्रकाण्डता शायद उनके लेखकों की समझ से भी परे थी, मैं मानवता की नियति के बारे में, पूरी सामाजिक व्यवस्था को पुनर्गठित करने के सपने देखने के बारे में, राजनीति और क्रान्ति के बारे में गम्भीरतापूर्वक सोच-विचार रहा था और अपने आप को एक ''भारी भरकम सक्रिय शक्ति'' बनाने के लक्ष्य को समर्पित करने की तैयारी कर रहा था, और यहां, एक वेश्या के शरीर द्वारा मुझे गर्म किया जा रहा था, जो एक दयनीय, पिटी हुई, हताश इंसान थी, जिसका जिन्दगी में कोई स्थान नहीं था, जिसे किसी काम का नहीं समझा जाता था और जिसके द्वारा सहारा मिलने से पहले मुझे यह सूझा तक नहीं था कि मुझे उसको सहारा देना चाहिए और यदि यह बात मेरे दिमाग में आती भी तो शायद मैं यह नहीं समझ पाता कि यह मैं करूं कैसे।

ओह, मैं यह सोचना चाहता था कि मेरे साथ यह सब कुछ सपने में हो रहा है, एक बेतुका, असुखकर सपना...

लेकिन अफसोस, मुझे यह सोचने का अधिकार नहीं था, क्योंकि बारिश की ठण्डी बूंदे मेरे ऊपर चू रहीं थीं, औरत की छाती मेरे सीने को सख्ती से दबाये हुए थी, मैं उसकी गर्म सांसों को अपने चेहरे पर महसूस कर रहा था, हालांकि उनमें से वोदका की बू आ रही थी... फिर भी—वे इतनी जीवनदायी थीं... हवा हुहुआ रही थी और कराह रही थी, बारिश नाव पर चोटें बरसा रही थी, लहरें थपेड़े मार रही थीं और आपस में प्रगाढ़ आलिंगनबद्ध होकर भी हम ठण्ड से कंपकंपा रहे थे। यह सबकुछ एकदम वास्तविक था और मुझे विश्वास है कि इस वास्तविकता जितना बुरा और दुखपूर्ण सपना किसी ने नहीं देखा होगा।

और नताशा थी कि बात किये जा रही थी, बात किये जा रही थी, कभी किसी चीज के बारे में तो कभी किसी चीज के बारे में, ऐसी कोमलता और सहानुभूति के साथ, जिनके साथ सिर्फ औरतें ही बातें कर सकती हैं। जैसी बचकानी और कोमल बातें वह कर रही थी, उनसे एक तरह की मद्धम, नन्हीं लौ मेरे भीतर जल उठी थी, जिसकी गर्मी से मेरा हृदय पिघल रहा था।

फिर मेरी आंखों से धारादार आंसू बहने लगे, मेरे हृदय की उन सभी कड़वाहटों, लालसाओं, मूर्खताओं और गंदगी को धोते हुए, जो उस रात तक मैल की तरह उसपर जमे हुए थे... नताशा ने मुझे खुश करने की कोशिशें जारी रखीं :

''सब ठीक हो जायेगा, मेरे प्यारे, रोओ मत! सब ठीक हो जायेगा। ईश्वर की कृपा से तुम इस सबसे उबर जाओगे। तुम्हें फिर से तुम्हारी नौकरी मिल जायेगी...'' और इसीतरह की ढेर सारी बातें।

और उसने मुझे चूमना जारी रखा, मुझ पर उष्ण, उदार चुम्बनों की बरसात करती रही।

वे औरत के पहले चुम्बन थे, जिन्हें जिन्दगी ने मुझे अता फर्माया था और वे सर्वोत्कृष्ट थे, क्योंकि बाकी सभी तो मेरे लिए भयंकर रूप से मंहगे साबित हुए और वस्तुत: उनसे मुझे कुछ भी हासिल नहीं हुआ।

''मत रोओ, चुप हो जाओ, बेवकूफ! कल यदि तुम्हारा कोई जुगाड़ नहीं हो पायेगा, तो मैं तुम्हें कहीं-न-कहीं लगवा दूंगी...'' मैं उसकी मद्धम, सांत्वनाभरी फुसफुसाहट मानो नींद में सुन रहा था।

... पौ फटने तक हम एक-दूसरे की बांहों में पड़े रहे।

जब रोशनी हुई तो हम नाव के नीचे से रेंगकर निकले और शहर की ओर चल दिये... वहां हमने एक-दूसरे से दोस्ताना ढंग से विदा ली और फिर कभी नहीं मिलने के लिए अलग हो गये, हालांकि छ: माह तक उस प्यारी नताशा को ढूंढ़ने के लिए मैं तमाम झुग्गी-झोंपड़ियों की खाक छानता रहा जिसके साथ मैंने, एक पतझड़ के दौरान, वह रात गुजारी थी जिसका मैंने अभी बयान किया है।

यदि वह मर चुकी है—तो इससे शानदार चीज उसके लिए भला और क्या होगी—उसकी आत्मा को शान्ति मिले! और यदि वह जिन्दा है—तो भी उसे शान्ति नसीब हो! और उसकी अन्तरात्मा में पाप का अहसास कभी न जगे, क्योंकि उसके लिए वह अतिरिक्त से दुखदायी होगा और उसकी जिन्दगी के तौर-तरीके में कोई फर्क नहीं ला पायेगा...

(1894)

जोसेफ स्तालिन की एक दुर्लभ कविता

उसकी पीठ और कमर झुक गई थी
लगातार काम करते-करते।
जो कल तक दासता की बेड़ियों में बंद
घुटने टेके हुए था,
वह अपनी आशा के पंखों पर उड़ेगा
सबसे ऊपर, ऊपर उठेगा।
मैं कहता हूं उसकी ऊंचाई पर
पहाड़ तक
अचरज और ईर्ष्या करेंगे।

(1895)

(यह कविता **स्तालिन** (1879-1953) ने महज 16 वर्ष की आयु में लिखी थी। दासता की बेड़ियों में जकड़े जिन मेहनतकशों के आशा के पंखों के सहारे उड़ने का सपना उन्होंने देखा था, उन्हीं सपनों को सच्चाई में बदलने का रास्ता स्तालिन की पूरी जिन्दगी का सफरनामा रहा। 1917 की सोवियत समाजवादी क्रान्ति को अंजाम देने में वे लेनिन के अगुवा सहयोगी रहे और नवजात सर्वहारा राज्य के जीवन-मृत्यु के संघर्ष में हर पल लेनिन के भरोसेमन्द साथी रहे। लेनिन की मृत्यु के बाद उन्होंने तीस वर्षों तक सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण करने में रूस की जनता की रहनुमाई की, द्वितीय विश्वयुद्ध में हिटलर की फौजों को धूल चटाकर मानवता की रक्षा की और पूरी दुनिया के संघर्षरत मेहनतकशों, विश्व सर्वहारा और कम्युनिस्ट ताकतों का मार्गदर्शन किया। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि पूरी दुनिया के पूंजीपति, उनका मीडिया और उनके भाड़े के टट्टू पूंजीवादी बुद्धिजीवी स्तालिन को सबसे अधिक गालियां देते हैं और उनके खिलाफ सबसे अधिक कुत्सा-प्रचार करते हैं। ऐसा ही कभी **रोब्सपियेर** (फ्रांसीसी क्रान्ति का महानायक) के साथ भी हुआ था। तमाम कुत्सा-प्रचारों के बावजूद पूरी दुनिया के मेहनतकश प्रथम समाजवादी प्रयोग के मार्गदर्शक को गहरे प्यार और श्रद्धा से याद करते हैं।—सम्पादक)

राहुल फाउण्डेशन की जरूरी किताबें

माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण
—35 रुपये

पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन
—लेनिन —15 रुपये

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
—वी.एन. अदोरात्सकी —15 रुपये

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (खण्ड-दो)
(दि शंघाई टेक्स्टबुक) —60 रुपये

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (खण्ड-एक) —60 रुपये

कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र
—कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स रु. 10.00

अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन
—एल्बर्ट रीस विलियम्स रु. 75.00

दायित्वबोध पुस्तिका श्रृंखला

अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं
—दीपायन बोस रु. 10.00

समाजवाद की समस्याएं,. पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति
—शशिप्रकाश रु. 12.00

क्यों माओवाद
—शशिप्रकाश रु. 10.00

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला

मई दिवस का इतिहास
—अलेक्जेण्डर ट्रैक्टनबर्ग रु. 3.00

बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में
—चाङ चुन चियाओ रु. 3.00

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा
—वी.आई. लेनिन रु. 5.00

मकड़ा और मक्खी
—विल्हेल्म लीब्कनेख्त रु. 2.00

ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीके
—सर्जी रोस्तोवस्की रु. 2.00

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 12 रुपए रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर ड्राफ्ट या एम.ओ. भेजें:
जनचेतना
3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर,
लखनऊ-226010
फोन (नया नंबर): 308896

असली उग्रवादी तो इस देश की पुलिस है!

पूंजीवादी प्रचार-तंत्र गला फाड़-फाड़कर देश में बढ़ते उग्रवाद के खतरे की चर्चा करता रहता है। यूं मीडिया जिन्हें उग्रवादी कहता है, उनमें से यदि राष्ट्रीयताओं की मुक्ति के लिए संघर्षरत कुछ युवाओं ने उग्रवाद का रास्ता पकड़ा भी है, तो भी उनकी कुछ राजनीतिक प्रतिबद्धता है और उनके पीछे स्थानीय जनता की सहानुभूति है। दूसरी बात यह है कि राज्यसत्ता का आतंक-राज्य भी इसके लिए जिम्मेदार है।

सच पूछें तो असली उग्रवादी तो हमारे देश की पुलिस है। और चूंकि पुलिस-तंत्र में काम करने वालों की अपनी कोई राजनीतिक प्रतिबद्धता नहीं होती है, वे महज वेतनभोगी होते हैं, इसलिए वे ही असली ''भाड़े के उग्रवादी'' होते हैं।

लाख छिपाने-ढंकने के बावजूद, पुलिसिया उग्रवादी कारनामों में से एक छोटा-सा हिस्सा अखबारों में आ ही जाता है। देश भर से निकलने वाले स्थानीय अखबारों में एक वर्ष के भीतर छपी ऐसी खबरों को यदि इकट्ठा करें तो पुलिस-जुल्म के शिकार लोगों की संख्या उग्रवाद के शिकार लोगों से कई गुनी अधिक निकलेगी।

अभी पिछले दिनों, नये साल के जश्नों की खबरों के बीच पुलिस-जुल्म से तंग एक सिख युवक ने प्रधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के चुनाव-क्षेत्र व उत्तर-प्रदेश की राजधारी लखनऊ में विधान सभा के सामने मूकदर्शकों की तरह खड़े पुलिस वालों की आंखों के सामने आत्मदाह कर लिया। उसके कुछ ही दिनों बाद, एक और ऐसे व्यक्ति ने लखनऊ में ही आत्मदाह कर लिया। विधानसभा के सामने उसे मौका नहीं मिला तो अपने मुहल्ले में ही उसने ऐसा कर लिया। इसी बीच कोचिंग पढ़ने के बाद अपने दोस्त की गाड़ी में बैठी बात कर रही एक छात्रा को पुलिस ने मेरठ में गोलियों से छलनी कर दिया।

और यह तो केवल एक बानगी है। नई सदी के पहले सप्ताह की महज कुछ घटनाएं। दूर गांव-देहात में हर थाने में फर्जी मुठभेड़ों, हिरासत में बलात्कार आदि की घटनाएं लगभग हर माह घटती हैं और दबा दी जाती हैं। सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों के बावजूद, पुलिस हिरासत में लेने के लिए डकैतों की तरह धावा मारती है और पूछताछ के दौरान 'थर्ड डिग्री मेथर्ड' का इस्तेमाल करती है। बुन्देलखण्ड के इलाके में जनता डकैतों से उतना नहीं डरती, जितना कि पुलिस से और इसलिए वह संरक्षण के लिए डकैतों से रब्त-जब्त रखती है। बहुतेरे डकैतों का अतीत भी यही रहा है कि वे पुलिस या सवर्ण भूस्वामियों के जुल्मों से ही तंग आकर चम्बल के बीहड़ों में चले गये।

लेकिन चम्बल के बीहड़ों के बागी आम जनता को उतने खूंखार नहीं लगते जितना कि खाकी वर्दी वाले। हम जनता की बात छोड़ दें, इस देश के एक उच्च न्यायालय के एक प्रसिद्ध न्यायाधीश पुलिस को ''अपराधियों के सर्वाधिक संगठित गिरोह'' की संज्ञा दे चुके हैं। पुलिस कमीशन के एक भूतपूर्व अध्यक्ष भी इसी आशय की टिप्पणी कर चुके हैं। पुलिस के एक उच्च अधिकारी स्वयं अपनी एक पुस्तक में लिख चुके हैं कि दंगों के दौरान प्रायः पुलिस स्वयं दंगाई की भूमिका में आ जाती है और अल्पसंख्यकों पर कहर बरपा करने में हिन्दू पार्टी की भूमिका निभाती है। मलियाना काण्ड को मेरठ क्या, पूरे देश की जनता आज भी याद करती है। मुजफ्फरनगर में पुलिस ने उत्तराखण्ड के आन्दोलनकारियों के साथ जो सुलूक किया, वह हिटलर के नाजी दस्तों के कारनामों से भला कहां कम था?

दोष दरअसल, व्यक्तिगत तौर पर पुलिस-कर्मियों का नहीं है। दोष इस राज्यसत्ता का है, जिसके वे महज कल-पुर्जे मात्र हैं। पूंजीवादी राज्यसत्ता जनता पर आतंक-राज्य कायम रखे बिना एक दिन टिकी नहीं रह सकती और आतंक कायम रखने का मुख्य उपकरण पुलिस ही है। सेना की जरूरत तो सिर्फ अहम और फैसलाकुन मौकों पर ही पड़ती है। इसीलिए बेरोजगारों की भारी भीड़ से वेतनभोगियों की नियुक्ति की जाती है और फिर उन्हें क्रमशः समाज से काटकर, अमानवीकरण करके, शिकारी कुत्तों की तरह साधकर, अनुभवी-घाघ नौकरशाहों की देखरेख में आतंककारी तंत्र का नट-बोल्ट बना दिया जाता है।

साम्राज्यवादियों से रिश्ता बनाने के मामले में हमारे देश की राज्यसत्ता भले ही 'नरम राज्यसत्ता' हो, पर जनता के सन्दर्भ में यह निहायत सख्त राज्यसत्ता है। कुछ पढ़े-लिखे और सम्पत्तिवान तबकों को भले ही कानून और संविधान से हासिल सीमित जनवादी अधिकारों का लाभ मिल जाता हो, आम गरीब जनता के लिए तो यह वस्तुतः एक पुलिस राज्य है जहां सारे कानून थाने या चौकी के दीवान जी की जेब में होता है।

पुलिस की दरिंदगी शासक वर्गों की जरूरत से पैदा हुई है। जबतक सामाजिक ढांचे में बदलाव न हो, किसी भी शासकीय-प्रशासकीय सुधार से कोई उम्मीद करना भेड़ियों को बौद्ध धर्म में दीक्षित करने जैसा ही होगा। पुलिस-जुल्म का मुकाबला जनता केवल अपनी संगठित शक्ति के बल-बूते पर ही कर सकती है, यह सच्चाई दिन के उजाले की तरह साफ है।

पर्यावरण की चिन्ता या इजारेदारी की सोची-समझी साजिश

दिल्ली में लघु उद्योगों की बन्दी का मुद्दा

(पेज 1 से आगे)

औद्योगिक-वित्तीय आधार को मजूबत बनाने के लिए कुछ निश्चित नीतियों पर अमल किया (i) उन्होंने विदेशी पूंजी के अत्यधिक दबाव से बचने के लिए जनता की गाढ़ी कमाई से ''समाजवाद'' के नाम पर वसूली करके 'पब्लिक सेक्टर' के उद्योग खड़े किये (ii)विदेशी दबाव से बचने के लिए समाजवादी देशों की मदद और साम्राज्यवादियों के बीच की होड़ का लाभ उठाया (iii) चूंकि देशी एकाधिकारी पूंजीपतियों के पास हर सेक्टर में लगाने लायक पूंजी नहीं थी, इसलिए तमाम सेक्टरों में छोटे और मंझोले उद्यमियों-कारखानेदारों को प्रोत्साहित किया गया।

लगभग 1980 तक आते-आते हालात बदले। देशी बड़े पूंजीपति अपनी ताकत बढ़ा चुके थे और अब पब्लिक सेक्टर को हड़पने के लिए तैयार थे। उनके पास निवेश के लिए पर्याप्त पूंजी थी और वे उन क्षेत्रों पर भी एकाधिकार चाहने लगे थे जो या तो अबतक छोटे और मंझोले उद्योगों के लिए आरक्षित थे या बेहतर लाभ के अवसर मौजूद होने के चलते बड़े पूंजीपति अबतक जिन क्षेत्रों में दिलचस्पी नहीं ले रहे थे।

उधर दुनिया के हालात भी बदले। पश्चिमी देशों ने लम्बी मंदी से उबरने के लिए पूंजी की अधिकता के संकट को हल करने के लिए गरीब देशों के शासक पूंजीपतियों पर पूंजी-निवेश का रास्ता खोलने के लिए दबाव बढ़ा दिया और विश्व बाजार का स्वामी होने के चलते उन्होंने 'ब्लैकमेलिंग' व दबाव का भी भरपूर सहारा लिया। सोवियत संघ के पतन के बाद स्थितियां पश्चिमी देशों के पक्ष में और अधिक हो गईं। इधर तीसरी दुनिया के देशों के पूंजीपतियों की यह अपनी भी मजबूरी थी कि उन्नत तकनोलाजी और पूंजी के लिए वे साम्राज्यवादी पूंजी के साथ जूनियर पार्टनर के रूप में समझौते करें ओर उनके प्रवेश के रास्ते की सभी बाधाओं को हटा दें। यह उनकी जरूरत भी है और मजबूरी भी। और यही प्रक्रिया उदारीकरण-निजीकरण के दौर में आज जारी है।

जहां तक हमारे देश के छोटे और मंझोले कारखानेदारों की बात है, इनका चरित्र पुराने उपनिवेशों के उन राष्ट्रीय पूंजीपतियों जैसा कत्तई नहीं है जो अपने वर्गीय हितों की खातिर साम्राज्यवाद के विरुद्ध, ढुलमुलपन के बावजूद, खड़े हुए थे और राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्षों के भागीदार बने थे। सच यह है कि भारत के छोटे-मंझोले कारखानेदार (उन छोटे उद्यमियों को छोड़कर जो कि पांच-दस मजदूर रखकर उनके साथ खुद भी काम करते हैं) साम्राज्यवादी पूंजी के साथ सहयोग और उसकी ताबेदारी के लिए प्रायः बड़े पूंजीपतियों से भी अधिक आतुर रहे हैं। प्रायः इनके उद्यम देशी-विदेशी बड़े पूंजीपतियों के कारखानों के लिए ही कुछ कल-पुर्जे या सामग्री उत्पादित करते हैं या फिर निर्यात के लिए कुछ माल तैयार करते रहे हैं।

मजदूरों के प्रति इनका रवैया सबसे नंगा दमनकारी होता है। पिछड़ी तकनोलाजी के चलते यह मजदूरों की श्रम शक्ति को सस्ती से सस्ती दरों पर निचोड़कर ही बाजार में सस्ती कीमत पर अपना माल बेच सकते हैं और इसके लिए वे मजदूरों के साथ राक्षसी व्यवहार करते हैं। लगभग सारा काम ये दिहाड़ी और ठेका मजदूरों से कराते हैं जिनसे 30-40 रुपये मजदूरी में दस-बारह घण्टे नारकीय स्थितियों में काम लिया जाता है और कोई सुविधा नहीं दी जाती।

अब नये-नये क्षेत्रों में पूंजी लगाने के लिए बदहवासी से होड़ में लगे देशी बड़े पूंजीपतियों की और विदेशी पूंजीपतियों की निगाह भी उत्पादन के उन क्षेत्रों पर है जिनपर फिलहाल छोटे और मंझोले पूंजीपति काबिज हैं। इसीलिए अब सरकार लघु उद्योगों के लिए आरक्षित क्षेत्रों को धीरे-धीरे खुला कर रही है और एकाधिकारी पूंजी को मौका दे रही है कि वह पूंजी की ताकत और उन्नत तकनोलाजी के सहारे छोटी पूंजी को निगल जाये। यूं तो बड़ी मछली द्वारा छोटी मछलियों को निगल लिया जाना साम्राज्यवाद की सदी का आम सार्वभौमिक नियम रहा है। पर अब उसी नियम पर खुले अमल की एक बानगी हमें अपने देश में देखने को मिल रही है।

दिल्ली में पर्यावरण-सुधार के नाम पर 1 लाख 37 हजार लघु उद्योगों को बंद करने का जो कुचक्र सुप्रीम कोर्ट के फैसले की आड़ लेकर रचा जा रहा है, वह भी वास्तव में एकाधिकारीकरण की ही प्रक्रिया है जो हुकूमत की मदद से आगे बढ़ाई जा रही है।

सर्वहारा वर्ग की स्वाभाविक हमदर्दी जाहिरा तौर पर उन मालिकों के साथ नहीं हो सकती जो उन्हें जानवरों और दासों की तरह खटाते हैं तथा नारकीय स्थितियों में और रोज-रोज रोजगार की असुरक्षा की आशंका में जीने के लिए मजबूर करते हैं।

लेकिन इन छोटे उद्योगों को बंद करने से 15 लाख से भी अधिक जो मजदूर आबादी बेकार हो जायेगी उसके सामने खड़ा हो जाने वाला भुखमरी का संकट एक फौरी संकट होगा। इन छोटे उद्योगों की क्रमिक तबाही के बाद दिल्ली के आसपास और दूरवर्ती औद्योगिक क्षेत्रों में खुलने वाले बड़े पूंजीपतियों के जो उद्योग इनका स्थान लेंगे उनमें तकनोलाजी उन्नत होगी तथा बहुत थोड़े-से मजदूरों को ही काम पर रखकर अतिलाभ निचोड़ा जायेगा। दूसरी बात यह कि ऐसा नहीं कि उन थोड़े से मजदूरों को भी बेहतर वेतन तथा काम और जीने की बेहतर परिस्थितियां मुहैया की जायेंगी। बेरोजगार मजदूरों की भारी आरक्षित शक्ति सड़कों पर खड़ी होने के कारण, उन्नत मशीनों पर काम करने वाले मजदूरों को देशी-विदेशी बड़े पूंजीपति भी कम से कम तनख्वाह देकर दिहाड़ी और ठेके पर ही काम करायेंगे। यह स्थिति साहिबाबाद, गाजियाबाद, नोएडा आदि औद्योगिक क्षेत्रों में आज ही दिखाई दे रही है। देशी बड़े पूंजीपतियों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उन्नत कारखानों में भी मजदूरों से छोटे कारखानों जितनी ही तनख्वाह पर, लगभग उतनी ही बदतर स्थिति में, और ज्यादातर दिहाड़ी या ठेके पर ही काम लिया जा रहा है। मजदूरों को कभी भी धक्के मारकर बाहर कर देने, रहे-सहे श्रम कानूनों को भी ठेंगे पर रखने, यूनियन कार्रवाइयों को कुचलने व यूनियनें न बनने देने के लिए गुण्डों की मदद लेने जैसे मामलों में अब बड़े मालिक भी छोटे मालिकों जैसा ही खुला जालिमाना व्यवहार कर रहे हैं। यानी छोटे-मंझोले कारखानों की तबाही का जो सिलसिला आज दिल्ली में और देश के अन्य हिस्सों में अलग-अलग ढंग से जारी है, उससे बेकार होने वाली भारी मजदूर आबादी में से एक बहुत छोटे से हिस्से को ही देशी-विदेशी बड़े पूंजीपतियों के नये स्थापित होने वाले उद्योगों में काम मिल पायेगा और उनके भी काम करने और जीने की परिस्थितियों-शर्तों में रत्ती भर सुधार नहीं आयेगा। यह उसी तबाही का एक रूप है जो भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में जारी एकाधिकारीकरण की प्रक्रिया मेहनतकश आबादी पर थोप रही है।

दिल्ली के छोटे कारखानों की बन्दी के पीछे भी यही साजिश काम कर रही है। पर्यावरण की चिन्ता तो महज एक बहाना है।

लघु और मंझोले उद्योगों की भांति-भांति की तिकड़मों से और कानूनों में बदलाव की आड़ लेकर बन्द करने के पीछे बड़ी पूंजी की जो उतावली है, उसे समझना मुश्किल नहीं है। पिछड़ी हुई तकनीक और पुरानी उत्पादन-प्रणाली के बावजूद छोटे उद्योगों का देश के कुल औद्योगिक उत्पादन में चालीस प्रतिशत और निर्यात में आधे से अधिक का योगदान है। इसीलिए इस पूरे हिस्से पर अधिकार जमाने के लिए देशी-विदेशी बड़े पूंजीपति आज बेतरह आतुर हैं। दूसरी ओर उद्योगों में लगी कुल श्रम-शक्ति का लगभग सत्तर फीसदी हिस्सा इन्हीं छोटे और मंझोले उद्योगों में काम करता है। उत्पादन के इन क्षेत्रों में बड़ी पूंजी के काबिज होने के बाद इस श्रम-शक्ति का बड़ा हिस्सा ''फाजिल'' बनाकर सड़कों पर धकेल दिया जायेगा।

यह प्रक्रिया आज पूंजीवादी विकास की स्वाभाविक गति है। आज का पूंजीवाद इससे भिन्न कुछ कर भी नहीं सकता। इस बात को समझकर ही मजदूर वर्ग रोजगार की और काम के अधिकार की अपनी लड़ाई को आगे बढ़ा सकता है और इसे पूंजीवाद के विरुद्ध सीमान्तों पर लड़ी जाने वाली भावी निर्णायक लड़ाई की एक कड़ी बना सकता है।

बिगुल पढ़िए, बिगुल पढ़ाइए,
बिगुल के सदस्य बनिए, बनाइए
बिगुल का वार्षिक चंदा : 36 रुपए
(डाक खर्च सहित 40 रुपए)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग: कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक: डा. दूधनाथ। सम्पादकीय पता: द्वारा ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006. सम्पादकीय उपकार्यालय: जनगण होम्यो सेवासदन, मयांदपुर, मऊ।